chap-1

:: प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश ::

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश :—

प्रास्ताविक :—

कहानी की परिगणना कथा-साहित्य के अंतर्गत होती है । जहां तक कथा-साहित्य का प्रश्न है, वह हमारे यहां प्राचीन काल से उपलब्ध है । हितोपदेश, पंचतंत्र, कथासरित सागर, बौद्धजातक कथाएं , जैन जातक कथाएं, बत्तिस पुतलियों की वार्ता, विक्रम वैताल की कथाएं, रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों की कथाएं अत्यंत ही विपुल मात्रा में उपलब्ध होती हैं । अतः इस विषय में तो भारत अन्य देशों का गुरू भी कहा जा

सकता है। परन्तु जिसे आज हम कहानी, आख्यायिका या गल्प कहते हैं, वह प्रक्रिया एक अलग ही साहित्यिक विधा है। पुरानी कहानियों से वह कई बातों में भिन्न पड़ती है।

पुराना आख्यायिका साहित्य अवैज्ञानिक, अतार्किक, चमत्कार-पूर्ण था, जबकि वर्तमान कहानी साहित्य जीवन और जगत के यथार्थ अनुभवों पर आधारित है। उस पुराने कथा-साहित्य में व्यक्ति उड़ सकता था, अदृश्य हो सकता था, मनुष्य से पशु या पक्षी बन जाता था, पृथ्वी से स्वर्ग और स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरित होता था, अभिप्राय यह हैकि बड़ी ही अजीबोगरीब घटनाएं उसमें निहित रहती थी। दूसरे शब्दों में कहें तो वे कहानियां आश्चर्य चिन्हों से मंडित थी। उसमें मानव जीवन के सामाजिक साम्प्रत सरोकारों और प्रश्नों को प्रायः एक तरफ रखा जाता था। जबकि आधुनिक कहानी का सम्बंध जीवन की तीखी, निर्मम, कठोर वास्तविकताओं से है। मानव जीवन से उसका प्रत्यक्ष सरोकार है। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी विशेष प्रदेश, समाज, या समय की जीवन-विषयक समस्याओं और कृत्यों को समझना हो तो कहानी साहित्य से बेहतर कोई दूसरा स्रोत मिलना मुश्किल है है। उपन्यास और नाटक में भी जीवन के सरोकारों को लिया जाता है। परन्तु उनका आकार और फलक विस्तृत होता है। अतः बड़े और व्यापक पैमाने पर जीवन के प्रवाहों को ~~xxxx~~ उनमें उकेरा जाता है। जबकि कहानी का कलेवर छोटा होने ~~के कारण~~ साहित्यकार साम्प्रत जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं को उसमें अधिक आसानी और सुविधाजनक तरीके से उरेह सकते हैं। बहरहाल यहां हमारा मंतव्य यह है कि जहां पुराना कथा-साहित्य काल्पनिक, कपोलकल्पित, वायवी घटनाओं से परिपूर्ण था वहां आधुनिक कहानी साहित्य जीवन की वास्तविक भूमि पर खड़ा है।

पुराना कथा-साहित्य स्थूल मनोरंजन-प्रधान, बोध-प्रधान और देशकाल तत्व से रहित था। उसमें कई बार स्थान का कोई अतापता भी नहीं रहता था, समय का उल्लेख भी नहीं होता था, "एकस्मिन देशे", "एकस्मिन काले" जैसे जुम्लों से काम चलाया जाता था। राजाओं के नाम या तो होते ही नहीं थे या होते तो भोज, विक्रम, उदयन, दुष्यंत, आदि

सामान्य नाम होते हैं जो प्रायः सभी कहानियों में पाए जाते थे। दूसरी तरफ नाम देने पर आते तो पशु-पक्षी और जीव-जन्तुओं के भी नाम रहते थे। यथा— चित्रग्रीवी नामक कबूतर या जुम्कु नामक चींटी, हीरामन नामक तोता आदि-आदि।[1]

उन कहानियों का परिवेश प्रायः सामन्तकालीन होता था और उसमें सर्वसाधारण या आम मनुष्य की बात बहुत कम होती थी। सर्व-साधारण मनुष्य कभी आता भी था तो गौण या पार्श्व-भौमिक पात्र के रूप में। केन्द्र में तो वे ही राजा, महाराजा, सामंत, राजकुमार, राजकुमारियां, मंत्री-महाजन और उनके पुत्र-पुत्रियां ही रहते थे। जबकि आधुनिक कहानी के केन्द्र में मनुष्य है सभी प्रकार, सभी कोटियों और सभी जातियों के मनुष्य। बहुधा यहां सामान्य या मध्यवर्गीय, निम्नमध्यवर्गीय और निम्न-वर्गीय मनुष्य की संवेदनाएं केन्द्रीभूत हुई हैं। 19 वीं-20 वीं शताब्दी में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी जैसी धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं के आंदोलन तथा राजा राम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्र नाथ ठाकुर, महादेव गोविन्द रानाडे, आगारकर, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, दयानन्द सरस्वती, नवीनचन्द्र राय, पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, पंडिता रमाबाई, मैडम ब्लेवात्स्की, श्रीमती एनी-बीसेन्ट, सरोजिनी नाईडू, महात्मा गांधी,[2] रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, महर्षि अरविंद, नर्मद, मेहता दुर्गाशंकर, नवलराम, जैसे महानुभावों के कारण जो मानवलक्षी धर्म की मुहिम चली उसके अंतर्गत दलित चेतना और नारी चेतना के जो मुद्दे उभर कर आए और उसके कारण सम्पूर्ण भारत में जो एक नवसुधारवादी आन्दोलन चला उसने भी आधुनिक कहानी को अनेक आयामों से प्रभावित किया है। अभिप्राय यह है कि मनुष्य और समाज को देखने की साहित्यकार की दृष्टि में ही एक मूलग्राही परिवर्तन परिलक्षित होता है।

पुरानी कहानी और नई कहानी का एक व्यावर्तक अभिलक्षण यह भी है कि जहां पुरानी कहानी कुछ कथा-सूत्रों (Story-Motifs) पर आधारित होती थी वहां आधुनिक कहानी मानव जीवन के यथार्थ अनुभवों का आकलन करती है।[3] अतः कहानीकार कहानी अनुभवों की ताजगी और जीवन-

विषयक समस्याओं का वैविध्य प्राप्त होता है । यहां प्रत्येक कहानी एक नये जीवन अनुभव को लेकर अवतरित होती हुई प्रतीत होती है ।

साहित्य का एक उद्देश्य मनुष्य को बेहतर तरीके से समझना भी है । इस प्रकार प्रकारान्तर से साहित्य मानव-जीवन का अध्ययन भी है । उसमें भी आधुनिक काल में उपन्यास, कहानी, नाटक इत्यादि विधाएं यथार्थ मनुष्य के चित्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं । यहां "यथार्थ" शब्द ध्यातव्य है । "यथार्थ" से अभिप्राय मनुष्य जैसा है उसके यथार्थ रूप से है । मनुष्य देवता भी नहीं है और राक्षस भी नहीं है । वह इन दोनों के बीच में कहीं अवस्थित है । अतः जहां मानवीय शक्ति और प्रतिभा की अनंत संभावनाएं हैं वहां दूसरी तरफ मनुष्य में मानव सहज कमजोरियां भी पाई जाती हैं । अच्छे से अच्छे मनुष्य में कुछ कमजोरियां होती हैं और बुरे से बुरे मनुष्य में भी कहीं जीवन के उजले पक्ष दीप-सी ज्योति की तरह टिमटिमाते नजर आते हैं । कहानीकार का लक्ष्य मनुष्य के इस सही रूप का आकलन होता है । जीवन एक सतत संघर्ष है, एक युद्ध है, यह संघर्ष और युद्ध जितना बाह्य है उतना ही आंतरिक भी । मनुष्य प्रतिक्षण एक लड़ाई अपने हृदय से, अपने मन से, अपनी आत्मा से लड़ता रहता है । मनुष्य के भीतर चलने वाले इस अंतर्द्वन्द्व को रूपायित करना भी सामान्य तौर पर साहित्यकार का और विशेष तौर पर कहानीकार का लक्ष्य होता है ।

यह दृश्य सृष्टि द्वन्द्वात्मक है, सृष्टि के मूल में ही पुरुष और प्रकृति का साहचर्य है । इन दो तत्वों के अभावों में सृष्टि का क्रम आगे बढ़ ही नहीं सकता । अतः विश्व भर के मानव समुदाय में लगभग 50 प्रतिशत संख्या स्त्रियों की भी है । इसलिए बहुत से लोग उसे "आधी दुनिया" की संज्ञा देते हैं ।[4] अतः मानव जीवन की कहानी के साथ नारी जीवन का आलेखन भी अतिआवश्यक है । हालांकि यह एक अलग बात है कि संस्कृति की इस सुदीर्घ परंपरा में नारी को स्त्री को, कहीं भी एक मनुष्य रूप में, एक व्यक्ति रूप में देखने का प्रयत्न नहीं हुआ है । उसे एक वस्तु, एक कोमोडिटी के रूप में ही देखा गया । हमारे एक महाकाव्य ने उसकी एक अग्नि परीक्षा ली, तो दूसरे ने उसे जुए के दाव पर लगा दिया । "बंगला भाषा का एक महत्वपूर्ण शब्दकोश है । उसमें पुरुष के लिए जो समानार्थक शब्द दिए गए हैं उसमें

"मनुष्य" शब्द भी है । परन्तु उसी शब्दकोश में नारी के लिए जो शब्द दिए गए हैं उसमें कहीं भी मनुष्य शब्द का उल्लेख नहीं है ।[5] मेरे निर्देशक डा० पारूकान्त देसाई की एक कविता में व्यंग्यात्मक ढंग से कहा गया है —

"मोटर एक चीज है / [illegible]

बंगला एक चीज है /

गाड़ी एक चीज है /

बीबी एक चीज है /

ज्यो माल पुरूष का /

आज केवल माल है /

सारे संबंधों में चीजों के बीज हैं ।"[6]

परन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है नारी विषयक चिंतन और चेतना में अपेक्षाकृत गुणात्मक अंतर क्रमशः दृष्टिगत तो रहा है । पुनर्जागरण कालीन आंदोलन, स्वाधीनता आंदोलन, पश्चिम और पूर्व के नारी आंदोलन, नारी संगठन इत्यादि के कारण अब नारी की स्थिति में क्रमशः कुछ सुधार आ रहा है । सामाजिक और राजनैतिक नीति निर्धारण में स्त्री की क्या भूमिका हो सकती है, उसका अंदाजा तो पिछले दिनों में दक्षिण में हुए नारी आन्दोलनों से सिद्ध हो जाता है । कर्नाटक और तमिलनाडु की साक्षरता अभियान से जुड़ी नारियों ने जो "अरकबंदी" विषयक मुहीम चलाई उसके कारण इन दोनों राज्यों को शराब बंदी पर प्रतिबंध लगाना पड़ा है ।[7]

कुछ स्वैच्छिक संस्थाओं की मदद से सरकार ने "अक्षरदीपम" नामक एक योजना को कार्यान्वित किया था । जिसका कार्य स्त्रियों में साक्षरता बढ़ाने का था । यहां गौरतलब बात यह है कि इस साक्षरता अभियान की प्रक्रिया ने ग्रामांचल की इन शोषित, क्षुब्ध स्त्रियों में इतनी जागरूकता ला दी कि वे झाडू और मिर्च की बुकनी जैसे घरेलू हथियारों से शराब के ठेकेदारों से लोहा लेने को कटिबद्ध हो गईं । और उन ठेकेदारों का गांव में पैर रखना भी असंभव कर दिया । यहां कवेरी देवरियापल्लि गांव की बूढ़ी लक्ष्म्मा के निम्नलिखित शब्दों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है —"हम औरतें क्या जानती हैं । हम कमरतोड़ काम पर जाती हैं । घर लौट आती हैं । दिन-भर बाहर खट के फिर हम बच्चों को खाना-पकाने में खटती हैं । मर्द तो

सबकुछ जानते हैं , पर वे काम के बाद कहीं भी जाकर अरक पीने बैठ जाएंगे । इस दुनिया से इस शराब का नाम मिट जाना चाहिए । क्या अरक की कमाई के बिना सरकारें नहीं चल सकती ? अगर नहीं, तो फिर वह दो सरकार से कि इन पियक्कड़ों को वह पाले ।" [8]

यहां इस तथ्य को रेखांकित किया जाय कि साक्षरता अभियान जैसी इस छोटी-सी चिन्गारी ने अपढ़, गंवार, अशिक्षित, ग्रामीण नारियों में कितनी शक्ति और चेतना भर दी है । इससे यही फलित होता है कि ज्यों-ज्यों नारी शिक्षा का परिमाण बढ़ेगा, त्यों-त्यों उसकी चेतना भी बढ़ती जाएगी । नारी में आइ यह चेतना 19-20 वीं शताब्दी के सामाजिक, धार्मिक आन्दोलनों का भी परिणाम है । एक सर्वेक्षण के अनुसार सन、1897 में गुजरात राज्य में कालेज में पढ़ने वाली महिलाओं की संख्या केवल 18×प्रतिशत थी । जो आज बढ़ते-बढ़ते हजारों की संख्या में पहुंच गई है । [9]

शैलेश मटियानी की कहानियों में नारी के कई रूपों का चित्रण उपलब्ध होता है । उन्होंने लगभग 1952 से लिखना प्रारम्भ किया है और अद्यावधि वे लेखनरत हैं । जिसमें उन्होंने लगभग 20 के करीब उपन्यास और 200 कहानियां लिखी हैं । उनकी यह साहित्य-यात्रा या कथा-साहित्य की यात्रा, पिछले 5 दशकों में विस्तृत हुई है । अतः इन वर्षों में आए हुए सामाजिक ,धार्मिक, राजनैतिक, वैचारिक परिवर्तनों के उद्वेलन तो उसमें मिलेंगे ही, प्रत्यु पूर्ववर्ति 3-4 दशकों की छवि भी वहां प्रतिबिम्बित होगी क्योंकि उनकी कई कहानियों में का समयबोध स्वातंत्रतापूर्व के कुछ दशकों का भी है । बहरहाल हम यहां यह निवेदित करना चाहते हैं कि भारतीय जन-जीवन में स्त्रियों की स्थिति-क्षमता, सीमाओं के आकलन हेतु कहानी-साहित्य का अध्ययन एक महत्वपूर्ण स्त्रोत प्रमाणित हो सकता है । कुछ लोगों का तर्क हो सकता है कि इसे जानने-समझने के लिए उन्हें इतिहास और समाजशास्त्र के पास जाना चाहिए, साहित्य के पास नहीं । परन्तु यहां हमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उस कथन को नहीं भूलना चाहिए जो उन्होंने प्रेमचन्द के सन्दर्भ में कहा था कि "अगर ये कोई उत्तर भारत के ग्रामीण-जीवन को जानना , समझना व परखना चाहता है तो प्रेमचन्द से ज्यादा उत्तम परिचायक कोई दूसरा नहीं मिल सकता ।" [10]

साहित्यिक तबकों में कार्लमार्क्स का यह कथन भी बहुप्रचलित है कि फ्रांस को जितना मैंने बाल्जाक की कृतियों के द्वारा जाना है उतना वहां के समाज-शास्त्रियों, इतिहासकारों, शास्त्रकारों, और विद्वानों ने भी नहीं जान पाये । [11]

अतः कह सकते हैं कि जिस तरह रेणु और नागार्जुन के द्वारा बिहार के नारी जीवन को "अश्क और भीष्म शाहनी की कहानियों से उत्तर-पश्चिमांचल के नारी जीवन को " गुजराती के राष्ट्रीय शायर झवेर चन्द मेघाणी के साहित्य से काठियावाड़ के नारी जीवन को जाना जा सकता है ठीक उसी तरह शैलेश मटियानी की कहानियों के द्वारा हम कुमाऊं प्रदेश के नारी-जीवन को भली-भांति जान सकते हैं । इसके अतिरिक्त मटियानी जी बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, इलाहाबाद, अलमोड़ा, इत्यादि नगरों में भी रहे हैं अतः नगरीय परिवेश के नारी जीवन को भी उनकी कहानियों में लक्षित किया जा सकता है ।

आधुनिक काल में हिन्दी कहानी के विकास के विभिन्न कारक :—

19 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध भारतीय जन-जीवन तथा इतिहास में अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा है । हिन्दी-गुजराती आदि कई भाषाओं में आधुनिक युग का प्रारंभ सन्. 1850 के आसपास से माना गया है । यही वह समय है जब भारतीय भाषाओं में साहित्य की कुछ नवीन विधाओं का समावेश होता है । इन नवीन विधाओं में "कहानी" भी एक है । यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक कहानी, वस्तु, शिल्प , भाषा, -चिंतन, प्रभृति कई दृष्टियों से उस पुरानी कहानी से भिन्न है । बल्कि यों कहना ठीक रहेगा कि इन दोनों में केवल नाम का ही साम्य है । आधुनिक काल में उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आदि की भांति कहानी भी आविर्भूत हुई । यहां बहुत संक्षेप में उससे सम्बद्ध कुछ कारणों पर विचार करने का उपक्रम है ।

गद्य का विकास :—

आधुनिक काल में कहानी के विकास का एक प्रमुख कारण गद्य का विकास है । क्योंकि कहानी मूलतः गद्य की ही विधा है प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्रचुर-मात्रा में कथा-साहित्य के उपलब्ध होने का एक कारण यह भी था कि संस्कृत प्राकृत का गद्य सुविकसित तथा परिमार्जित था । दूसरी ओर हिन्दी के आदिकाल तथा भक्तिकाल में कुछ एक गद्य रचनाएं प्राप्त होती हैं । परन्तु परिणाम की दृष्टि से वे नगण्य हैं । और उनका गद्य भी अविकसित, अपरिपक्व एवं तत्कालीन काव्य-भाषाओं से आक्रान्त है । कहानी, निबन्ध , आत्मकथा, रिपोतार्ज, जीवनी, समालोचना जैसे आधुनिक काव्यरूपों के योग्य एवं अनुरूप गद्य वहां हरगिज नहीं था । वस्तुतः यूरोप में भी कथा-साहित्य का विका तभी हुआ जब गद्य साहित्य प्रांजल और बलवात्तर हुआ । डेनियल-डिको, रिचर्डसन (Rechardson), स्मोलेट, स्टर्न इत्यादि अंग्रेज कथाकार 18 वीं शताब्दी में आविर्भूत हुए क्योंकि इनके पूर्व एडिसन, स्टील, आदि निबन्धकारों के फलस्वरूप, और पत्रकारिता के पर्याप्त विकास के फलस्वरूप ऐसे गद्य का विकास हो चुका था जो वर्णन, विवेचन और चित्रण में समर्थ था ।[12]

ठीक इसी तरह आधुनिक काल में हिन्दी गद्य का समुचित विकास हुआ है । पद्य की तुलना में इतना विपुल गद्य-साहित्य हिन्दी के किसी भी पूर्ववर्ती काल में उपलब्ध नहीं होता है । आधुनिक काल की इस गद्याभिमुखता के कारण ही शायद आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को "गद्य काल" नाम से अभिहित किया था ।[13]

हिन्दी गद्य का वास्तविक आरंभ तो सन् 1801 में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ आरंभ हुआ । इस कालेज में जॉन गिल क्राइस्ट हिन्दुस्तानी भाषा-विभाग के अध्यक्ष थे । उन्होंने हिन्दी में पं. सदल मिश्र तथा लल्लू लाल जी गुजराती को नियुक्त किया । और उन्हें हिन्दी गद्य में कुछ पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने का काम सौंपा गया । इसी प्रकार उन्होंने कुछ मौलवियों को रखकर उर्दू गद्य की किताबें भी लिखवाईं । परन्तु हिन्दी गद्य का उत्सव उसके भी पूर्व हमें पटियाले के रामप्रसाद निरंजनी के "भाषा योग-

वाशिष्ट" नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है । राम प्रसाद निरंजनी ने यह ग्रन्थ 1741 में लिखा था और उसका गद्य बाद में 19 वीं शताब्दी में पं. सदल मिश्र, मुंशी सदासुख लाल, राजा लक्ष्मण सिंह, आदि के ग्रंथ से काफी निकट का प्रतीत होता है । यहां उससे कुछ पंकितयां उद्धृत की जा रही हैं —" है राम जी जो पुरूष अभिमानी नहीं है वह शरीर के इष्ट और अनिष्ट में राग द्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है । मलीन वासना को छोड़कर जब तुम स्थित हो तब तुम करता हुए भी निर्लोप रहोगे और हर्ष, शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग, भय, क्रोध, से रहित रहोगे । जिसने आत्म-तत्व पाया है, वह जैसे स्थित हो वैसे ही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टि को, पाकर आत्म-तत्व को देखो ।" [14]

"भाषा योग ई वशिष्ठ" का यह गद्य जैसा कि ऊपर कहा गया 19 वीं शताब्दी के गद्य से काफी निकटस्थ लगता है । सन् 1761 में मध्य प्रदेश निवास पं. दौलतराम ने रविषेणाचार्य कृत जैन "पद्मपुराण" का भाषानुवाद किया । इस ग्रन्थ की भाषा योग वाशिष्ट की भाषा के समान व्यवस्थित तो नहीं किन्तु इससे भी यह बात प्रमाणित होती है कि हिन्दुओं के यहां खड़ी बोली के जिस रूप का प्रचार था, उसमें ब्रजभाषा और अवधी का पुट तो रहता था किन्तु फारसी और अरबी के शब्द उसमें नहीं चलते थे ।" [15]

परन्तु उपर्युक्त ग्रंथों को अपवाद रूप ही समझना चाहिए क्योंकि हिन्दी गद्य का अस्खलित प्रवाह तो 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही मिलता है । हिन्दी गद्य के इन उन्नायकों में हम चार महानुभावों को ले सकते हैं - पं. सदल मिश्र, लल्लूलाल गुजराती, मुंशी सदासुख लाल, तथा इंशाअल्ला खां । इसमें प्रथम दो फोर्ट विलियम कालेज से सम्बद्ध है तो दूसरे दो स्वतंत्र रूप से लिखने वाले गद्य लेखकों के रूप में हमारे सामने आते हैं । इनमें पं. सदल मिश्र तथा मुंशी सदासुख लाल की गद्य शैली रामप्रसाद निरंजनी की परम्परा में आती है । लल्लू लाल गुजराती में ब्रजभाषा तथा अरबी, फारसी का पुट मिलता है । इंशा अल्ला खां की "रानी केतकी की कहानी " में अरबी, फारसी के शब्दों की बहुलता है । ये दो प्रकार की गद्य शैलियाँ हिन्दी गद्य के प्रारंभ से ही उपलब्ध होती हैं, जो कमोबेश रूप में हमें आज भी प्राप्त होती हैं । उक्त

चार महानुभावों के बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद, तथा राजा लक्ष्मण सिंह इस क्षेत्र में आते हैं । राजा शिव प्रसाद की गद्य शैली ई इंशाअल्ला खां तथा लल्लू लाल गुजराती की परंपरा से सम्पृत है तो राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृत बहुल भाषा शैली के पक्षधर हैं ।

उपर्युक्त महानुभावों द्वारा विकसित हिन्दी गद्य को महर्षि दयानंद सरस्वती, पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, नवीनचंद्र राय, बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके मण्डल के लेखक, श्रीधर पाठक, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. माधव प्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पदम सिंह शर्मा कमलेश, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, अज्ञेय , अमृतलाल नागर, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, प्रभृति लेखकों ने उत्तरोत्तर अधिक सम्‍ृद्ध किया है। हिन्दी गद्य को समृद्ध एवं सम्पन्न करने में हमारे आलोच्य लेखक का भी कम योगदान नहीं है । कुमाउनी बोली के अनेक सार्थक शब्दों का प्रयोग मटियानी जी द्वारा प्रसारित हुआ है । संक्षेप में यहा हमारा अभिप्राय यह है कि आधुनिक काल में गद्य के विकास ने हिन्दी कहानी के विकास को गति प्रदान की है ।

2- कहानी के विकास में नवजागरण की भूमिका :----

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात मिशनरी धर्म प्रचारकों ने (पादरियों ने) तत्कालीन प्रचलित हिन्दू धर्म की कुछ कमजोरियों पर प्रहार करने शुरू कर दिए थे । हिन्दू धर्म में अनेक बाह्याडम्बर, अंधविश्वास, तथा कुरूढ़ियों ने घर कर समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग उपेक्षित था । उनका भयंकर शोषण हो रहा था । स्त्रियों के साथ भी अनेक विषयों में भेद-भाव बढ़ता जा रहा था और पुरूष वर्ग के द्वारा उनका सामाजिक,पारिवारिक , नैतिक शोषण हो रहा था । दलित जातियों का शोषण, अस्पृश्यता, सतीप्रथा का रिवाज, बाल विवाह का प्रचलन , विधवा विवाह पर प्रतिबंध , नारी शिक्षा का अभाव, दहेज का प्रचलन, जैसी समस्याएं हमारे समाज में नव-सुधारों की प्रतीक्षा में थी । ऐसी स्थिति में जब विदेशी मिशनरियों ने हमारे धर्म पर प्रहार करना शुरू किया तब हमारे समाज के कुछ विचारवंत और प्रतिभावंत लोगों ने हिन्दू धर्म

का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए तथा विश्व के अन्य धर्मों का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए, उसके कतिपय सारभूत और मूलभूत तत्वों को उजागर करते हुए उक्त समस्याओं में सुधार लाने की भरसक चेष्टा की । ब्रह्म समाज , प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसोफीकल सोसाइटी, जैसी धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं तथा राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन , महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, ज्योतिबा फुले, ईश्वरचन्द विद्यासागर, जैसे महानुभावों के कारण 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नव-सुधारवाद की एक आंधी-सी चली । हिन्दू समाज तथा धर्म ने नई करवट ली, नया कलेवर धारण किया, इस पश्चात् मु. ने हिन्दी कहानी को विकसित करने में बड़ा योगदान दिया । क्योंकि लेखकों को विधवा विवाह, अनमेल विवाह, के परिणाम, बाल-विवाह के परिणाम, वृद्ध विवाह के परिणाम, दहेज प्रथा , जातिवाद , अस्पृश्यता, नारी शिक्षा, जैसे नए-नए विषय मिलते है गए जिनके ऊपर वे स सहहेतु एवं सोद्देश्य कहानियों का सृजन करते गए । नवजागरण के पूर्व का वातावरण जहां केवल कविताओं जैसी कुछ विधाओं के उपयुक्त था वहां इस नवीन वातावरण ने कहानी, निबंध, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जैसी नवविधाओं के विकसित होने में अपना नवीन विषय-वस्तु मंजुशा खोल दी ।

3- अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार :—

मुगलों तथा मराठों के पतन के बाद शनैः शनैः अंग्रेजों ने यहा अपना प्रभाव बढ़ाया और 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक परोक्ष व प्रत्यक्ष रूप से समूचे भारत वर्ष पर कब्जा कर लिया अंग्रेजों ने कि मक्कारी और धूर्तता के साथ यह सब किया उसका व्यंग्यात्मक चित्रण भगवती चरण वर्मा द्वारा प्रणीत कहानी "मुंगलों ने सल्तनत बख्श दी" [16] तथा मेरे निर्देशक डॉ0 पारूकांत देसाई के एक व्यंग्य निबन्ध "जरा इतना " में प्रभुविष्णुता के साथ हुआ है । [17] 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही मेकोले ने हमारे देश में अंग्रेजी शिक्षा की नींव रखी । सर, जॉनवुड का शिक्षा-विषयक डिस्पेच आया । कलकत्ता, बम्बई, मद्रास जैसे महानगरों में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई । बाद में चंडीगढ़ युनिवर्सिटी और इलाहाबाद युनिवर्सिटी, जैसे विश्वविद्यालय भी अस्तित्व में आए । यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि 19 वीं शताब्दी के प्रथम

चरण में ही फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ ही नवशिक्षा नीति का पदार्पण हो चुका था । इस नीति के कारण भारत के बहुत से उच्च वर्ग के तथा उच्च-मध्यवर्ग के युवक अंग्रेजी साहित्य से परिचित हुए । हमारे यहां संस्कृत में बोधप्रधान कथा-साहित्य तो था परन्तु अंग्रेजी ने जिसे शार्ट स्टोरी (Short-Story) कहते हैं ऐसे साहित्य का अभाव था । यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है । अतः उपन्यास की ही भांति हमारे यहां के नवशिक्षित लोगों ने कहानी विधा में लिखने का श्रीगणेश किया । इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानी के विकास में अंग्रेजी शिक्षा भी कारणभूत है ।

4- पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन :---

आधुनिक काल में मुद्रण-कला के अस्तित्व में आ जाने से गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ । पहले पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थी और मूल प्रति के आधार पर उसकी दूसरी प्रतियां हाथ से ही तैयार होती थी । जिनको पांडु लिपियां कहा जाता है । हाथ से लिख जाने के कारण अलग-अलग पांडु-लिपियों में पाठ-भेद भी मिलता था, दूसरे पुस्तकों का भी प्रायः अभाव-सा रहता था क्योंकि एक प्रति से अधिक से अधिक 10-15 और प्रतियां बनती थी अतः प्रायः राज घरानों के ग्रंथों या ग्रंथागारों में वे पुस्तकें सुरक्षित रहती थी और जनसाधारण तक उनकी पहुंच नहीं होती थी । जन साधारण में तो लोकश्रुति द्वारा जितना पहुंच पाता था उतना ही संग्रहीत व सुरक्षित रहता था । जब ग्रंथों और पुस्तकों की यह स्थिति थी तब पत्र-पत्रिकाओं का तो प्रश्न ही नहीं पैदा हो सकता , परन्तु आधुनिक काल में मशीनरी या मशीनी-करण के कारण जो आद्योगिक क्रान्ति हुई उसने तो समाज के रूप को ही बदल कर रख दिया । सामाजिक परिवर्तनों की गति तीव्र से तीव्रतर होती गई और आगे भी जैसे-जैसे Electronic Media के साधन अधिकाधिक विकसित होते जाएंगे वैसे-वैसे सामाजिक परिवर्तनों में क्षिप्रगामिता तीव्रतम होती जाएगी । बहरहाल यही कहना है कि उसी आद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप मुद्रण कला अ अस्तित्व में आई और मुद्रणकला के आते ही प्रकाशन के क्षेत्र में एक नए युग का

आरंभ हुआ । पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हो गया । हिन्दी में उदंड मारतंड, बंगदूत, प्रजामित्र, बनारस मारतंड, सुधाकर बुद्धि प्रकाश [18]

1- हरिश्चन्द्र मैगेजीन [सं. भारतेन्दु]

2- ब्राह्मण सं. प्रताप नारायण मिश्र

3- हिन्दी प्रदीप सं. बाल कृष्ण भट्ट

4- आनंद कादम्बिनी , सं. बद्रीनारायण चौधरी

5- सदादर्श सं. लाला श्रीनिवास दास

6- भारतेन्दु सं. राधाचरण गोस्वामी

जैसी पत्रिकाएं प्रकाश में आईं । दयानंद सरस्वती के अनुयायी नवीनचंद्र राय ने ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका नामक पत्रिका को निकाला । भारतेन्दु तथा भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों ने भी इसमें बड़ा योगदान दिया । बाद में "सरस्वती", "नागरी प्रचारिणी," "इन्दु", "हंस", "जागरण", "सारिका", मंच" जैसी पत्रिकाएं भी प्रकाश में आईं । इन पत्रिकाओं में जो रचनाएं प्रकाशित होती थीं, उनमें कविता के उपरांत कहानी विधा को अधिक स्थान दिया जाता था । पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि इस युग में नवजागरण की प्रकृति के कारण हमारा देश तथा समाज एक संक्रान्ति से गुजर रहा था हिन्दू समाज ने एक करवट ली थी बहुत से सामाजिक, धार्मिक मुद्दों को लेकर विमर्श चल रहा था । ऐसी स्थिति में कहानी का पनपना स्वाभाविक ही माना जाएगा । दूसरी तरफ कहानियों के प्रकाशन के लिए पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम के सुलभ हो जाने से कहानी लेखन की प्रवृत्ति को और भी गति मिली । कुछ पत्रिकाएं तो कहानी विधा को ध्यान में रख कर ही निकाली गईं । स्वयं हमारे आलोच्य लेखक शैलेश मटियानी ने भी समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया है । अभी कुछ समय पूर्व तक वे विकल्प नामक एक पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे । सम्प्रति धर्मयुग, [19] हंस, समकालीन, दस्तावेज, साक्षात्कार, भाषासेतु, रैनबसेरा, वीणा, साहित्य-धर्मिता, प्रभृति अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं जिनमें कहानियों का प्रकाशन बराबर हो रहा है । अभिप्राय यह है कि पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से कहानी-लेखन की प्रवृत्ति को विकसित होने में अधिक सुविधा रही है ।

5- कहानी का स्वरूप :---

कहानी की गणना कथा-साहित्य के अन्तर्गत होती है । परन्तु जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया है आधुनिक कहानी प्राचीन कहानी से शिल्प एवं प्रकृति उभय दृष्टि से भिन्न है । अपनी कहना और दूसरों की सुनना यह मनुष्य का स्वभाव है । इसलिए कहानी प्राचीन काल से एक लोकप्रिय विधा रही है । संसार के सभी देशों में किस्से, कहानियों की इस अलिखित परम्परा उपलब्ध होती रही है । राजदरबारों में भी किस्सागोई की प्रवृत्ति को प्राधान्य मिलता रहा है, जिसे हम विक्रम-वैताल, राजभोज की कहानियों में देख सकते हैं । परन्तु जिसे आज कहानी कहा जाता है उसका प्रारंभ तो हिन्दी में भारतेन्दु काल से मिलता है । "दुलाइवाली और कानो में कंगना" जैसी कहानियों को हिन्दी साहित्य के इतिहासकार हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में स्थान देते हैं । उन्हीं दिनों की एक कहानी है "टोकरी भर मिट्टी" । माधवराव सप्रे की यह कहानी व्यक्ति और समाज के रिश्तों की यह शायद पहली कहानी है । जमींदार की स्वार्थ लीला से टकराने वाली एक विधवा की गरीबी अंततः जमींदार का हृदय परिवर्तन करा देती है ।[20] प्रसाद जी का कहानी लेखन सन्. 1911 के आसपास शुरू हुआ था । पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी की कहानी "उसने कहा था" सन्. 1915 में प्रकाशित हुई थी । इस कहानी में हमें आधुनिक कहानी के प्रायः सभी अभिलक्षण प्राप्त होते हैं । यहां पर बहुत संक्षेप में कहानी के स्वरूप पर विचार कर लेना आवश्यक होगा ।

अमरीकी लेखक एडगर एलन पो ने कहानी की जो परिभाषा दी है वह इस प्रकार है ---" A short story is short enough to be read in a single sitting, is writen to make an impression on the reader, excluding all that does not forward that impression complete and final in itself." 21

. 21

अर्थात्, छोटी कहानी इतनी छोटी होती है कि उसे एक बैठक में

पढ़ा जा सके और जो पाठक के मस्तिष्क में कोई एक विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के हेतु लिखी जाती है । कहानी में उन तमाम ब्यौरों को बहिष्कृत किया जाता है जो इस प्रभाव को आगे बढ़ाने में सहायक न होते हों । कहानी अपने आपमें पूर्ण होती है । उपर्युक्त परिभाषा पर विचार करें तो उसमें मुख्य रूप से तीन बातों पर विचार किया गया है ---

1- कहानी का आकार-प्रकार ।

2- किसी एक विशेष प्रभाव का चित्रण ।

3- अनावश्यक ब्यौरों की बहिष्कृति ।

कहानी का आकार-प्रकार छोटा होता है उसे एक बैठक में पढ़ा जा सकता है । कहानी एक परिच्छेद से लेकर 50-60 पृष्ठों की हो सकती है । परन्तु आमतौर पर कहानी 8-10 पृष्ठों के बीच में रहती है । यहां एक बात ध्यातव्य रहेगी कि लघु उपन्यास का आकार भी लगभग कभी-कभी 50-60 पृष्ठों का हो सकता है । श्रवण कुमार गोस्वामी कृत प्रेत, शिवानी, कृत माणिक, जोकर, तरपन, प्रभृति लघु उपन्यास, गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि-कथाकार आलोचक सुरेश जोशी कृत मरणोत्तर जैसे लघु उपन्यास 50-60 पृष्ठों के ही रहे हैं । अतः यहां एक बुनियादी सवाल खड़ा हो सकता है कि फिर उपन्यास और कहानी की विभाजक रेखा क्या है ? अतः यहां तत्वतः यह समझ लेना आवश्यक है कि उपन्यास और कहानी में केवल आकार का अंतर नहीं है, प्रकृतिजन्य अंतर भी है । उपन्यास में जीवन की अनेकानेक समस्याएं तथा प्रसंग रह सकते हैं, जबकि कहानी मूलतः किसी एक मार्मिक प्रसंग को लेकर चलती है । कहानी बड़ी हो तब भी उसमें अधिक प्रसंग नहीं होंगे दूसरी तरफ उपन्यास छोटा होगा तब भी उसमें अनेकानेक प्रसंगों का चित्रण मिलेगा । यहां यह भी ध्यातव्य रहे कि उपन्यास का जो लघुत्तम कलेवर है वह कहानी का गुरुतम कलेवर होता है । वस्तुतः उपन्यास और कहानी दोनों में कथातत्व रहता है परन्तु उस कथातत्व की प्रकृति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है ।

प्रारंभ से ही कहानी के साथ जो एक मुख्य बात जुड़ी है वह यह कि कहानी में किसी एक मार्मिक प्रसंग या उसके प्रभाव का अंकन होता है । कहानीकार का उद्देश्य उस प्रभाव को अधिक से अधिक अधिक प्रगाढ़ बनाने की ओर रहता है । अतः कहानीकार इस बात को ध्यान रखता है कि कहानी में किसी

ऐसी बात का समावेश न होने पाये जिससे कि उसके प्रभाव को बाधा पहुंचे। कहानीकार का यही लक्ष्य होता है। इसलिए कहानीकार की दृष्टि को "अर्जुन दृष्टि" कहा गया है।[22] जिस प्रकार अर्जुन लक्ष्यभेद करते समय पक्षी के सिर और उसमें भी केवल उसकी आंख को देखता है ठीक उसी प्रकार कहानीकार कहानी में अभिव्यंजित प्रभाव को ही केन्द्रस्थ रखते हुए अन्य तमाम आयामों को उसके आस-पास वर्तुलित करता है। अतः संक्षिप्तता, संकेतात्मकता, एकान्विति, वैचारिक-एकसूत्रता, प्रभृति कहानी के साधक अभिलक्षण प्रमाणित होते हैं। कहानीकार सुनार की सौ में नहीं प्रत्युत लुहार की एक में विश्वास करता है।

तीसरी महत्वपूर्ण बात जो वस्तुतः उपर्युक्त बात से ही जुड़ी हुई है, वह है अनावश्यक ब्योरों की बहिष्कृति। उपन्यास का फलक विस्तृत होता है, उसमें जीवन और जगत की अनेक वस्तुओं का चित्रण रहता है। वह बहुआयामी होता है। अतः उसमें अनेक प्रकार के ब्योरे उपस्थित रह सकते हैं। उपन्यासों में भी जो पेनोरमिक शिल्प के उपन्यास होते हैं, विषयाधिक्य के सम्पन्न (over-plotting) उपन्यास होते हैं, जिनमें महा-काव्यात्मक चेतना होती है उन उपन्यासों के शिल्प में तो प्रायः शैथिल्य पाय जाता है और यह शैथिल्य उनमें दोष नहीं प्रत्युत गुण माना जाता है। रंग-भूमि, मैला आंचल, आधा गांव, कब तक पुकारूं, बूंद और समुद्र, गिरती दीवारें, मुझे चांद चाहिए, प्रभृति उपन्यासों को उसमें परिगणित कर सकते हैं। परन्तु एकसूत्र, रसात्मता, प्रभावान्विति इत्यादि के कारण कहानी में तमाम अनावश्यक ब्योरों को बहिष्कृत किया जाता है। आंग्ल सभ्यता का वह ध्रुव वाक्य — No Addmision without permission कहानीकार का भी ध्रुव वाक्य होता है। एक आंग्ल विवेचक ने तो यहां तक लिखा है कि कहानी में यदि किसी पात्र के हाथ में स्टिक (Stick) बताई है तो कहानी के अन्तर्गत उसका उपयोग कहीं न कहीं होना ही चाहिए। अभिप्राय यह की कहानी में कोई भी अनावश्यक बात खप नहीं सकती। इस दृष्टि से कहानी कविता के अधिक समीपस्थ ठहरती है। प्रेमचन्दोत्तर कहानी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ रही थी, एक प्रकार से वह कहानी का लक्ष्य होती जा रही थी; इस सन्दर्भ में स्वयं प्रेमचंद जी लिखते हैं ——

"वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है । उसमें कल्पना की मात्रा कम और अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है । इतना ही नहीं, बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं ।" [23]

ऊपर उपन्यास और कहानी के सन्दर्भ में उसके आकार-प्रकार की बात छेड़ी है परन्तु यह भी बताया गया है कि दोनों में शिल्पगत एवं प्रवृत्तिगत अंतर है । उपन्यास को बड़ी कहानी , और कहानी को छोटा उपन्यास नहीं कहा जा सकता । बाबू गुलाबराय ने इसे व्याख्यायित करने के लिए बड़ा मनोरंजक उदाहरण दिया है । बैल और मेंढ़क दोनों चौपाए प्राणी हैं, किन्तु इसके आधार पर बैल को बड़ा मेंढ़क और मेंढ़क को छोटा बैल नहीं कह सकते । बैल चारों पैरों पर समान वजन देते हुए चलता है, जबकि दूसरी ओर मेंढ़क दो पैरों के बल फुदक-फुदक कर चलता है ठीक यही अंतर उपन्यास और कहानी की चाल में भी है । [24] उपन्यास सभी तत्वों पर समान रूप से बल देते हुए अग्रसरित होता है जबकि कहानी में भी कथा साहित्य के तमाम त्वर तत्व होते हुए भी , प्राधान्य किसी एक तत्व को मिलता है ।

कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण या देशकाल का चित्रण विचार और उद्देश्य तथा भाषा-शैली ये छः तत्व उपन्यास में भी होते हैं और कहानी में भी । परन्तु उनका प्रयोग अलग-अलग ढंग से होता है । उपन्यास का वस्तु बहु-आयामी और फैला हुआ होता है , वहां कहानी का ब वस्तु किसी एक मार्मिक घटना में सीमित होता है । उपन्यास में 2-3 पात्रों से लेकर हजारों पात्र रह सकते हैं (देखिए - चंद्रकांता और चंद्रकांता संतति।) दूसरी ओर कहानी में अधिक से अधिक 10-15 पात्रों से अधिक की गुंजाइश नहीं है । उपन्यास में किसी पात्र के क्रमशः विकास की संभावनाएं होती हैं जबकि कहानी में पात्र को किसी घटना से सम्पृक्त करके प्रस्तुत किया जाता है । इसीलिए उसको जीवन का Snap-Shot कहा है । कहानी में यदि किसी पात्र में हृदय परिवर्तन बताया भी जाता है तो उसके लिए उपन्यास की भांति अनेक प्रसंगों की उद्भावना नहीं की जाती बल्कि कोई एक मार्मिक प्रसंग की चोट के द्वारा उसे व्यंजित किया जाता है । कहानी में कथोपकथन केवल तभी रखे जाएंगे, यदि कहानी के प्रभाव को सम्प्रेषित करने में उनकी

आवश्यकता हो, उसी प्रकार देशकाल या वातावरण तत्व का भी सीमित रूप में प्रयोग होता है। पुराने कहानीकारों में प्रकृति-वर्णन करने की एक प्रथा-सी थी, परन्तु अब वह धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। अब उसका चित्रण केवल तभी होता है जब कहानी के प्रभाव को बढ़ाने में वह सहायक हो, विचार और उद्देश्य भी कहानी में व्यंजित रहे तो अधिक सार्थक समझे जाते हैं। केवल एक भाषा-शैली वाला तत्व ऐसा है जो उपन्यास और कहानी में समान रूप से व्यवहृत होता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उपन्यास और कहानी उभय का कुल एक होने के बावजूद उनमें तत्वतः अंतर पाया जाता है।

6- हिन्दी कहानी उद्भव और विकास :—

पूर्ववर्ती पृष्ठों में अनेक सह-निर्दिष्ट किया जा चुका है कि प्राचीन कहानी और आधुनिक कहानी में केवल नाम का ही साम्य है। कथ्य, शिल्प, संचेतना, संवेदना, प्रभृति की दृष्टि से कहानी का विकास अन्य गद्य विधाओं की भांति आधुनिक काल में ही हुआ है। अन्य भारतीय भाषाओं की भांति हिन्दी की आरम्भिक कहानी भी स्थूल कथावस्तु प्रधान, प्रचारात्मक, रोमांचक, आदेशात्मक प्रकार की रही है। उपन्यास की तुलना में कहानी का उद्भव कुछ बाद में हुआ है। भारतेन्दु काल में निबन्ध या कुछ कथात्मक निबन्धों की रचना अवश्य हुई परन्तु कहानी का व्यवस्थित सूत्रपात तो सन् 1900 में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही हुआ। कहानी के उद्भव की दृष्टि से विचार किया जाय तो 19 वीं शताब्दी की निम्नलिखित 3 रचनाओं को लिया जा सकता है जिनसे होते हुए आधुनिक कहानी प्रसूत हुई है ——

1- रानी केतकी की कहानी (इंशा अल्ला खां)
2- देवरानी जेठानी की कहानी (पं. गौरीदत्त)
3- राजा भोज का सपना (राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद) [25]

उक्त आख्यायिकाओं में कथा कहने की प्रवृत्ति तो विद्यमान है परन्तु उनमें आधुनिक कहानी का कोई व्यावर्तक अभिलक्षण दृष्टिगत नहीं होता।

सन् 1900 से पूर्व वास्तविक आधुनिक कहानी का प्रारंभ नहीं हुआ

था । कहानियों के नाम पर इस समय कुछ संग्रह प्राप्त होते हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं ——

1- मनोहर कहानी (सन, 1880) सं. मुंशी नवल किशोर
लगभग 100 कहानियों का संग्रह ।

2- कथा कुसुम कलिका (1888), लेखक - अंबिकादत्त व्यास ।

3- वामा मनोरंजन (1886), लेखक- शिवप्रसाद सितारेहिंद ।

4- हास्य रत्न (1886) लेखक चंडी प्रसाद सिंह ।

इनमें संकलित कहानियां लोकप्रचलित तथा इतिहास-पुराण-कथित शिक्षा नीति और हास्य प्रधान कहानियां हैं । जिनको तत्कालीन लेखकों ने स्वयं लिखकर या लिखवाकर सम्पादित कर दिया था । यहां कहानी के नाम पर जो स्वप्न कथाएं मिलती हैं वे वस्तुतः कहानी न होकर कथात्मक निबंध हैं । इनका आरम्भ कथात्मक पद्धति से होता है, किन्तु बाद में अवसर मिलते ही तत्कालीन समाज की विकृतियों का वर्णन प्रारम्भ हो जाता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और बालकृष्ण भट्ट की स्वप्न कथाएं कहानी और निबन्ध के बीच की रचनाएं हैं । कहानियों के अभाव में तत्कालीन पाठक लघु उपन्यासों, मध्यकालीन प्रेमकथाओं के गद्यात्मक उपान्तरों, वेताल पच्चीसी, और सिंहासन बत्तीसी, की कहानियों, रसात्मिक लोककथाएं और इन्हीं स्वप्न कथाओं से अपनी मानसिक तृप्ति कर लेता था । [26]

इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उपयुक्त ही हो लिखा है --"अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी-छोटी आख्यायि-काएं या कहानियां निकला करती हैं वैसी कहानियों की रचना "गल्प" के नाम से बंग भाषा में चल पड़ी थी । वे कहानियां जीवन के बड़े मार्मिक और भाव-व्यंजक खंड चित्रों के रूप में होती थी । द्वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास लेकर प्रकट होने वाली "सरस्वती" पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे ।" [27]

अभिप्राय यह है कि सन, 1900 में "सरस्वती" पत्रिका के प्रकाशन के पूर्व आधुनिक कलात्मक हिन्दी कहानी का कोई अस्तित्व नहीं था ।

1- द्विवेदी युगीन हिन्दी कहानी :——

1- द्विवेदी युगीन हिन्दी कहानी :—

कहानी का सूत्रपात भले ही 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक हो गया हो, वास्तविक कलापूर्ण साहित्यिक कहानियों का समय तो सन् 1900 में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन से ही शुरू होता है। इस समय की प्रारम्भिक कहानियों में कुछ एक बंगला कहानियों से रूपान्तरित करके, कुछेक लोक-कथाओं से प्रेरणा लेकर, कुछेक ____________ तथा संस्कृत नाटकों के आधार पर तो कुछेक जीवन की वास्तविक घटनाओं पर आधृत थीं। इस समय के कहानी लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी, माधव प्रसाद मिश्र, जयशंकर प्रसाद, ~~[illegible]~~/ वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बंग महिला, प्रभृति उल्लेखनीय हैं। शेक्सपीयर के नाटक टेम्पेस्ट (Tempest) पर आधारित किशोरीलाल गोस्वामी की "इन्दुमती" कहानी "सरस्वती" में 1900 ई. में प्रकाशित हुई। [28] इसी वर्ष "सुदर्शन" नामक पत्रिका में मन की चंचलता नामक माधव प्रसाद मिश्र की कहानी प्रकाशित हुई। 1902 ई. में "सरस्वती" पत्रिका में ही लाला भगवानदीन बी.ए. की "प्लेग की चुड़ैल" नामक कहानी प्रकाशित हुई थी। यहां कहानी वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित थी। सन् 1903 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय" नामक कहानी प्रकाशित हुई। 1907 में बंग महिला की "दुलाई वाली" शीर्षक कहानी प्रकाशित हुई। जो उस समय साहित्यिक तबकों में बहुत चर्चित हुई थी। हिन्दी के आरम्भिक कहानीकारों में इन्हीं लेखकों के नाम आते हैं, परन्तु बाद में इनमें से कई दूसरी विधाओं की ओर चले गए और हिन्दी कहानी को विकसित करने का श्रेय वृन्दावनलाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह जैसे लेखकों पर आ गया। 1909 ई. में वृंदावनलाल वर्मा ने "राखीबंध भाई" नामक कहानी लिखकर ऐतिहासिक कहानियों का सूत्रपात किया, 1909 ई. में ही बनारस में "इन्दु" नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका में प्रायः जयशंकर प्रसाद की भावात्मक कहानियां प्रकाशित हुआ करती थी "इन्दु" में प्रकाशित प्रसाद जी की ऐसी कहानियों का संग्रह सन् 1912 में "छाया" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। राजा राधिक रमण प्रसाद सिंह की भावात्म कहानी "कानों में कंगना", "इन्दु" में ही सन् 1913 में प्रकाशित हुई थी।

इस बीच प्रेमचंद की कुछेक कहानियां उर्दू पत्र "जमाना" में प्रकाशित हो चुकी थी , परन्तु बाद में उर्दू में अधिक यश और धन की संभावना न देखकर प्रेमचंद जी हिन्दी की ओर अग्रसरित हुए थे । यहां यह तथ्य ध्यातव्य रहे कि हिन्दी जगत में प्रेमचन्द का प्रवेश पहले कहानीकार के रूप में हुआ । अभिप्राय यह कि कहानी के क्षेत्र में वे पहले आए, उपन्यास के क्षेत्र में बाद में । प्रेमचंद जी की जो कहानियां "सरस्वती" में प्रकाशित हुई उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं —— "सौत" [1915] , "पंचपरमेश्वर" [1916] , "सज्जनता " का दंड" [1916], "ईश्वरीय न्याय" [1917] , "दुर्गा का मन्दिर" [1917] ।

जहां तक हिन्दी कहानी के विकास का प्रश्न है इस काल में हिन्दी की एक बहुचर्चित और अमर कहानी प्रकाशित हुई थी । वह कहानी है पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की "उसने कहा था" यह कहानी 1915 ई. में "सरस्वती" में प्रकाशित हुई थी । इसमें लेखक ने त्यागमई आत्मिक प्रेम [Platonic-Love को कथा का विषय बनाया है । जो भारतीय संस्कृति की उदात्तता के अनुकूल है । प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि को लेकर लिखी गई यह हिन्दी की प्रथम कहानी है । इस समय की अन्य चर्चित कहानियों में ज्वालादत्त शर्मा, कृत "मिलन" , विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक" कृत "रक्षा बंधक" , पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत "झलमला " आदि मुख्य है । सन् 1918 में बनारस से "हिन्द गल्प माला" नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था । इसमें जयशंकर प्रसाद , गंगा प्रसाद श्रीवास्तव, तथा इलाचंद्र जोशी की कहानियां प्रकाशित होती रहती थी । इस प्रकार हिन्दी कहानी का जन्म लगभग 1900 ई. के आस-पास हुआ । और 1918 तक वह साहित्य जगत में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो गई । इतने कम समय में इस विधा के विकसित होने के पीछे कदाचित यह कारण है कि भारतीय मानस में कथा कहानी के संस्कार तो पहले से ही चले आ रहे थे, अतः पाश्चात्य कहानी कला से परिचित होने पर वे संस्कार पुनर्जागृत हो उठे और कलापूर्ण कहानियों का आरंभ हो गया । इस काल में जो कहानियां उपलब्ध होती हैं वे मुख्यतः दो भिन्न प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं । एक प्रवृत्ति प्रेमचंद द्वारा प्रवर्तित थी तो दूसरी प्रसाद द्वारा । प्रेमचंद जी जीवन की यथार्थ घटनाओं और समस्याओं को लेकर

मानव आदर्श की प्रतिष्ठ के सिद्धहस्त कलाकार थे तो प्रसाद जी मनुष्य के आन्तरिक भावद्वन्द्व को अभिव्यक्ति दे रहे थे । "प्रेमचन्द जी वर्तमान के दुख-दर्द, हार-जीत और न्याय -अन्याय की कहानी कह रहे थे , जब कि प्रसाद अतीत में कल्पना के सहारे रम रहे थे । प्रेमचंद उर्दू से हिन्दी में आए थे । उनकी भाषा बोलचाल की मुहावरेदार चुस्त और सजीव भाषा थी । इसके विपरीत प्रसाद काव्यमय अलंकृत तत्सम प्रधान भाषा लिखते थे । इन दोनों ने तत्कालीन लेखकों को पर्याप्त प्रभावित किया । आगे चलकर प्रसाद काव्य और नाटक के क्षेत्र में रम गए , कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद का स्थान अन्यतम रहा । कालांतर में हिन्दी कहानी में विकसित होने वाली सभी प्रवृत्तियों का उद्गम ह स्रोत यही लक्षित होता है । व्यक्ति को केन्द्र में रखकर लिखी जाने वाली कहानियों का उद्भव प्रसाद से और समाज के व्यापक हितों को दृष्टि में रखकर लिखी जाने वाली कहानियों का उद्भव स्रोत प्रेमचंद से स्वीकार किया जाना चाहिए ।" [29]

2- प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी :—

जिस प्रकार हिन्दी उपन्यास को गरिमा प्रदान करने का कार्य प्रेमचन्द जी ने किया, ठीक उसी प्रकार हिन्दी कहानी को भी उसका वास्तविक स्वरूप एवं गौरव प्रेमचन्द के द्वारा ही प्राप्त हुआ । हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास इसी युग में हुआ । प्रेमचन्द ने करीबन 200 कहानियां इस अवधि में लिखी हैं । उनकी कहानी लेखन की ये सबसे बड़ी विशेषता रही है कि उनकी कहानियों में हमें हिन्दी कहानी के विकास की प्रायः सभी अवस्थाएं दृष्टिगोचर होती हैं । प्रेमचन्द जी की प्रारंभिक कहानियों में आदर्शवाद, किस्सागोई, और सोद्देश्यता की मात्रा अधिक मिलती है । यथार्थ वास्तविक मानव चरित्रों का निर्माण करते हुए उसमें थोडा-सा मनोवैज्ञानिकता का पुट दे देना यह प्रेमचन्द जी की एक विशेषता रही है । उनकी कहानियां आस-पास की जिंदगी से जुड़ी हुई हैं । ग्रामीण जीवन से विशेष सरोकार होने के कारण उनकी अधिकांश कहानियों में ग्रामभित्तीय परिवेश मिलता है । तथापि उनकी बहुत-सी कहानियों में कस्बाएं जिंदगी, सत्याग्रह आंदोलन, स्कूल

कालेज का परिवेश, जमींदारों-साहूकारों, दफ्तर के बाबुओं तथा उच्चपदाधिकारियों की समस्याओं से अनुस्यूत हैं । प्रेमचंद जी की चर्चित कहानियों में निम्नलिखित मुख्य हैं --- "बलिदान, आत्माराम, बूढ़ी काकी, विचित्र - होली, मुक्दाह , हार की जीत, परीक्षा , आपबीती, उधार, सवासेर गेहूं , शतरंज के खिलाड़ी, माता का हृदय, मवाकी, सुजान भगत, इस्तीफा, अल्योझा, पूस की रात, तावान, होली का उपहार, ठाकुर का कुंआ, बेटों वाली विधवा, ईदगाह, नशा, बड़े भाई साहब, कफन , कायर , ज्योति आदि । प्रेमचंद एक जागरूक कलाकार हैं और अपनी कमजोरियों को समझते हुए उन्हें अपनी अगली कहानियों में दूर करने की पूरी कोशिश करते थे । "इसका सबसे अच्छा उदाहरण "बूढ़ी काकी", "शतरंज के खिलाड़ी", "मवाकी और इस्तीफा" जैसी कहानियाँ मानी जा सकती हैं । इनमें आदर्शवादी समाधान, पुराने मूल्यों के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति, समाज की आलोचना आदि कम है और कुछ मार्मिक स्थितियों को उनकी पूरी मनोवैज्ञानिकता और यथार्थता में उभारने की कोशिश अधिक । प्रेमचन्द की 1930 ई. के बाद की कहानियां उनकी पूर्ववर्ती कहानियों से नितांत भिन्न हैं । यद्यपि इनमें भी कुछ निहायत कमजोर कहानियां मिल जाती हैं, पर इस काल की अधिकतर कहानियों का स्वर व तेवर पहले से बदला हुआ प्रतीत होता है । प्रेमचन्द की इस काल की कहानियों में सच्चाई को उसके नग्नतम रूप में ही देखने का प्रयास नहीं, उसके उस पहलू को भी पकड़ने की भी चेष्टा है जिसकी ओर साधारणतः दृष्टि नहीं जाती । "पूस की रात", "तावान", और "कफन" तो प्रेमचंद की ही नहीं हिन्दी की बेजोड़ कहानियां हैं । कोई आचार्य नहीं की आधुनिक हिन्दी कहानी को इन्हीं कहानियों से जोड़ने की चेष्टा आज हो रही है ।" [30]

डा० पारूकान्त देसाई ने प्रेमचन्द जी की कहानियों का विश्लेषण करते हुए कहा है --"प्रेमचन्द जी सामाजिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध-लेखक हैं । उनकी कहानियों का उद्देश्य सामाजिक क्रान्ति होता है । अतः उनकी कहानियां रोमांचक, साहसिक, स्थूल घटना-प्रधान और कौतूहलवर्धक न होकर समाज के प्राण-प्रश्नों को मानवीय संवेदना के साथ उकेरने वाली होती है ।

मानवीय संवेदना प्रेमचंद की कहानियों का प्राणतत्व है । प्रेमचंद ने जो 300 के लगभग कहानियां लिखी हैं, उनमें हमें वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मिलते हैं क्योंकि प्रेमचंद जी के ही शब्दों में वे अपने कथा-साहित्य के पात्र पुस्तकों से न लेकर इस दृश्यमान जगत से लेते हैं । डा० गणेशन के मतानुसार उनके कथा-साहित्य में मानव चरित्र की पहचान मिलती है समाज के प्रति कटु यथार्थ को निरूपित करने वाली उनकी जो कहानियां हैं उनमें मानव चरित्र का सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है । प्रेमचंद का युग नवजागरण, समाज - सुधार, राष्ट्रीय चेतना और रूढ़ि विरोध का युग था । अतः उनकी कहानियों के विषय भी उसी के अनुरूप होते हैं । अनमेल विवाह, दहेजप्रथा, नारी की आर्थिक पराधीनता, नारी का समाज में नैतिक शोषण, नारी शिक्षा का प्रचार, अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता आदि अनेक विषयों पर प्रेमचंद जी ने अपनी कलम चलाई है । कलाकार की निजी पूंजी उसका दर्द होता है । और प्रेमचंद जी ने अपनी सभी कहानियों में मानवीय दर्द को उभारने का प्रयत्न किया है । कला की दृष्टि से प्रेमचंद जी की कहानियाँ मोपासा के करीब पड़ती हैं । प्रेमचंद जी की कहानियों में जागरूकता और कलागत तटस्थता के दर्शन होते हैं । "सवा सेर गेहूं", शंखनाद, मंत्र, ईदगाह, कफन, शतरंज के खिलाड़ी, नशा, पंच परमेश्वर, दो बैलों की कथा, पूस की रात , सद्गति, ठाकुर का कुंआ, आदि प्रेमचंद जी की बहुचर्चित एवं श्रेष्ठ कहानियां हैं ।[31]

प्रेमचंद युग की कहानी की एक व्यावर्तक पहचान-यह है कि उसमें साधारण मनुष्य और उसकी समस्याओं को प्राथमिकता दी गई है । इस सन्दर्भ में विष्णु प्रभाकर जी का यह अभिमत उल्लेखनीय रहेगा --"मैं तो मानता हूं कि प्रेमचंद पहले कथाकार थे जिन्होंने साधारण-जन को कहानी में स्थापित किया । उनके साथ-साथ और भी कई लोग थे जो लिख रहे थे, उन्होंने भी साधारण-जन की कहानियां लिखीं ।"[32]

प्रेमचंद युग में आकर हिन्दी कहानी पहली बार मानव परिवेश और मानवीय व्यवहार को राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों के निकट देखती है, और नये सहानुभूतिपूर्ण विवेक से आदर्श और वास्तविकता के द्वन्द्व को पहचानती है । प्रेमचंद जब जीवन के यथार्थ के स्वाभाविक चित्रण को आख्यायिका का ध्येय बताते हैं तो उनकी दृष्टि परिवेश की वास्तविकता पर

अनिवार्यतः बनी रहती है । प्रेमचंद युग का साहित्य महायुद्ध के बाद का साहित्य है । भारत की जनता इस युद्ध में प्रत्यक्षतः सम्मिलित नहीं हुई थी । परन्तु परोक्ष रूप से उसके आर्थिक दुष्प्रभावों से वह बच भी नहीं पाई थी । भयानक आर्थिक मंदी ने निराशा की छाया को और भी घनीभूत कर दिया था । तिलक की मृत्यु (1920) के बाद कांग्रेस का नेतृत्व जब गांधी जी के हाथ आया तो एक व्यापक परिवर्तन भारतीय जनमानस में लक्षित हुआ । कांग्रेस में निम्न मध्यवर्ग को पहलीबार महत्वपूर्ण भूमिका मिली । जनांदोलन शुरू हुए जिनमें हिन्दू-मुसलमान अलग नहीं थे । किसान और मजदूर भी इन आन्दोलनों में शरीक होने लगे । बुद्धिजीवियों के रूप में देश का दिमाग तो एक था परन्तु गांधी जी के बाद पहली बार देश की विराट जनता अर्थात् उसका दिल, सामने आया इसी बीच सन 1922-23 में साम्प्रदायिक दंगे हुए । शासन ने नृशंस दमन का रास्ता अख्तियार किया परन्तु उससे आंदोलन की जड़े और मजबूत हुई । अब तक नेहरू राजनैतिक मार्ग पर चल चुके थे, कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता की मांग को रखा जा चुका था । इन्हीं दिनों में भारतीय कॉम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ । कांग्रेस से कांग्रेस-समाजवादी और साम्यवादी दल अलग हुए । दमन की प्रतिक्रिया अधिक गहरी हुई । महाजनी सभ्यता और पूंजीवाद के पारस्परिक रिश्ते बढ़ते गए और उसकी सूक्ष्म समझ लेखकों में क्रमशः संक्रमित होती गई । इन सब बातों का सीधा असर प्रेमचंद युगीन कहानी पर देखा जा सकता है । डॉ० रामदरश मिश्र के शब्दों में —"प्रेमचंद को समकालीन यथार्थ की गहरी पकड़ थी । एक रचनाकार का प्राथमिक और किन्हीं-किन्हीं की दृष्टि में अंतिम दायित्व होता है यथार्थ की गहरी पहचान को अभिव्यक्ति देना । प्रेमचंद की कहानियां समकालीन जीवन-यथार्थ को गहरी पहचान से उद्भूत है । यथार्थ की पहचान दो स्तरों पर होती है । एक तो समकालीन जीवन में लक्षित होने वाले जीवन में, प्रसंगों, समस्याओं, घटनाओं, हलचलों आदि की स्वीकृति के स्तर पर । दूसरे इन समस्त सम्बन्धों, प्रसंगों, समस्याओं, घटनाओं, हलचलों आदि के मूल में कार्य करने वाली केन्द्रीय समझ के स्तर पर । वास्तव में असली यथार्थ दृष्टि इस दूसरे रूप में ही दिखाई पड़ती है ।" [33]

प्रेमचंद युग के अन्य महत्वपूर्ण कहानीकारों में सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, पांडे बेचैन शर्मा, "उग्र", वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, विनोद शंकर व्यास, भगवती प्रसाद वाजपेयी, ऋषभचरण जैन, भगवतीचरण वर्मा, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, सुभद्रा कुमारी चौहान, शिवरानी देवी, उषा देवी मित्रा, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, विष्णु प्रभाकर, इत्यादि कहानीकार आते हैं । प्रेमचंद युग में जैनेन्द्र और अज्ञेय का प्रारम्भिक कृतित्व भी आ जाता है । हालांकि उनका मुख्य कृतित्व प्रेमचंदोत्तर युग में परिलक्षित होता है । प्रेमचंद युग में अधिकांश लेखक प्रेमचंद द्वारा प्रभावित रहे परन्तु उस समय जयशंकर प्रसाद जैसे कहानीकार भी मिलते हैं जो प्रेमचंद से इतर एक दूसरे प्रकार की प्रवृत्ति का परिचय देते हैं । डा० नगेन्द्र जी के कहानियों के सन्दर्भ में लिखते हैं —"यद्यपि प्रसाद की कहानियों में प्रेम और करूणा का, त्याग और बलिदान का, दार्शनिकता और काव्यात्मकता का, भावुकता और चित्रात्मकता का प्राधान्य मिलता है । तथापि उनकी परवर्ती कहानियों में भावुकता और चित्रमयता की प्रवृत्तियां थोड़ी छूटी हैं और उनका स्थान मनोविज्ञान ने ले लिया है । "आकाश दीप", कला, देवदासी, आंधी, मधुवा, इन्द्रजाल , सालवती, आदि कहानियों में उलझनपूर्ण मनःस्थितियों तथा मानसिक द्वन्द्व के चित्रण में प्रसाद को पूरी सफलता मिली है । एक खास प्रकार के नारी पात्रों की सृष्टि में प्रसाद जी अद्वितीय हैं । जो अपने निश्छल प्रेम, त्याग और बलिदान से पाठकों के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं । नियति और समाज से एक साथ संघर्षरत नारी का ऐसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है । इसके बावजूद प्रसाद की कहानियां आधुनिक कहानी से सही रूप में नहीं जुड़ पाती । उनकी जीवनदृष्टि ही नहीं, भाषा भी आधुनिक कहानी की प्रकृति के प्रतिकूल है । यही कारण है कि जहां प्रेमचंद को आधुनिक हिन्दी कहानी का जनक माना जाता है वहां प्रसाद को यह श्रेय नहीं मिलता ।" [34]

प्रस्तुत काल के कहानी लेखकों में विश्वम्भरनाथ "कौशिक" , सुदर्शन, पांडे बेचन शर्मा उग्र, रायकृष्ण दास, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि मुख्य हैं । कौशिक जी इस कालखंड के एक प्रमुख कहानीकार हैं । "गल्प मन्दिर", चित्रशाला (दो भागों-

में, प्रेम प्रतिमा, मणिमाला कल्लोल आदि कहानी संग्रहों में उनकी करीबन 200 से अधिक कहानियां संग्रहीत हैं। वे प्रेमचंद संस्थान के लेखक हैं और उन्होंने भी सामाजिक, पारिवारिक जीवन की बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा - प्रथा आदि समस्याओं को लेकर कहानियों का सृजन किया था। ग्रामीण - जीवन की अपेक्षा उन्होंने नगरीय जीवन का अधिक चित्रण किया है। सुदर्शन जी को कहानी संग्रहों में "सुदर्शन सुधा, सुदर्शन सुमन, तीर्थ यात्रा, पुष्पलता, गल्प मंजरी, सुप्रभात, परिवर्तन, पनघट आदि उल्लेखनीय हैं। उन्होंने भी अपने समय की ज्वलंत समस्याओं का आकलन किया है। "हार की जीत" तथा कवि की स्त्री आदि उनकी बहुचर्चित कहानियां हैं। आदर्शवाद तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में पुण्य तथा परम्परागत तथ्यों की प्रीत उनकी कहानी की कुछ व्यावर्तक रेखाएं हैं।

पांडे बेचन शर्मा "उग्र" जी सामाजिक चेतना के लेखक हैं और उनकी कहानियों में सामाजिक शोषण अनाचार तथा कुप्रथाओं के प्रति तीव्र आक्रोश मिलता है। समाज के नग्न यथार्थ को उन्होंने उसी नग्न स्वरूप में रखा है। उनकी कहानियों में व्यंग्य का पैनापन भी मिलती है। अपने अक्खड़ व्यक्तित्व बेलौस भाषा और पैनी दृष्टि के कारण वे सदैव याद किए जाएंगे। उनकी कहानी संग्रहों में "चिनगारियां, शैतान मंडली, इन्द्रधनुष, बलात्कार, चाकलेट, दोजख की आग, निर्लज्ज इत्यादि प्रमुख हैं।

राय कृष्णदास राधाराधिका रमण प्रसाद सिंह तथा विनोद शंकर व्यास, प्रसाद संस्थान के कहानीकार हैं। राय कृष्ण दास ने प्रसाद जी की तरह भाव प्रधान कहानियों की सृष्टि की है। कवित्वपूर्ण चित्रण तथा नाटकीय शिल्प योजना में वे प्रसाद जी की भांति एक सिद्धहस्त कलाकार हैं। अंतपुर का आरम्भ तथा रमणी का रहस्य जैसी कहानियां बड़ी चर्चित रही हैं।

चतुरसेन शास्त्री तथा वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित मार्मिक कहानियों की सृष्टि की है। शास्त्री जी की कहानियों में "दुखवा मैं कासे कहूं गोरी सजनी", अम्ब पालिका, भिक्षुराज, हल्दी घाटी, में बाणभट्ट वधु आदि उल्लेखनीय हैं। जिनमें उन्होंने इतिहास के मार्मिक प्रसंगों का उद्घाटन किया है। वृंदावनलाल वर्मा प्रायः बुन्देल खण्ड के इतिहास

तथा सामंती जीवन-मूल्यों और आदेशों को लेकर कहानी रचना में प्रवृत्ति हुए हैं। उनकी शरणागत कहानी अत्यंत चर्चित हुई थी।

भगवती प्रसाद वाजपेयी भी इस समय के एक प्रमुख कथाकार हैं। उनकी "मधुपर्क, दीपमालिका, हिलोर, मिठाईवाला, तारा, स्वप्नमयी, शबनम., आदि कहानियां विवेच्य अवधि में प्रकाशित हुई हैं, परन्तु उनकी सर्वाधिक चर्चित कहानी है -- "निंदिया लागी," जिसमें उन्होंने मध्यवर्गीय समाज की विसंगतियों का बड़ा अच्छा चित्रण किया है।"[35]

उपेन्द्रनाथ अश्क प्रेमचंद संस्थान के ही लेखक हैं। डा० सुमन कुमार "सुमन" के शब्दों में --" उपेन्द्रनाथ अश्क का जीवन-दर्शन प्रेमचंद की जीवन - दृष्टि का विकास कहा जा सकता है। अश्क जी सामाजिक वैषम्य का चित्रण कर मानव समानता के मूल्य की स्थापना करते हैं।"[36] उनकी प्रसिद्ध कहानियों में "डाची, लक्ष्मी, का स्वागत, काले साहब, तीन सौ चौबीस, आदि हैं। यहां यह स्मरण रहे कि अश्क जी प्रेमचंदोत्तर काल की आधुनातम कहानी प्रवृत्तियों के भी लेखक रहे हैं।

यद्यपि जैनेन्द्र जी की कहानी कला का विकास प्रेमचंदोत्तर युग में हुआ है तथापि प्रस्तुत काल में उनकी "खेल, अपना अपना भाग्य, बाहुबलि, वातायन, निनम देश की राज्य कन्या, दो चिडियां, ध्रुव यात्रा, पाजेब जैसी कहानियां प्रकाशित हो चुकी थी। उनकी कहानियों में व्यक्तिमन की शकाओं प्रश्नों और गुत्थियों का अंकन किया है। जैनेन्द्र के कहानी केन्द्र में नारी होती है। जो पुराने जीवन-मूल्यों तथा पातिव्रत्य की चहरदीवारी से बाहर निकलकर मुक्ति की सास लेना चाहती है। जैनेन्द्र की भांति अज्ञेय भी मुख्यतः प्रेमचंदोत्तर काल के लेखक हैं, लेकिन प्रस्तुत काल में उनकी भी कुछ कहानिय प्रकाश में आ चुकी थी जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं ---"कडिया, अमरवल्लव मैना, सिगनेलर, रेल की सीटी, रोज, हरसिंगार इत्यादि। अज्ञेय जी भी व्यक्तिमन की ग्रंथियों, प्रेरणाओं तथा अंतरद्वन्द्वों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। अज्ञेय की कहानियां मनोवैज्ञानिक होने पर भी सामाजिक संघर्ष और विद्रोह के तीखेपन से युक्त है। संक्षेप में "हिन्दी कहानी के विकास की दृष्टि से विवेच्यकाल का उल्लेखनीय महत्व है। प्रेमचंद ने हिन्दी काल को मजबूत नीव ही नहीं दी, उसे कलात्मक ऊंचाई भी प्रदान की,। कौशिक, सुदर्शन, उग्र,

राहुल आदि ने कहानी को सामाजिक पीड़ा की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाया जैनेन्द्र और अज्ञेय ने मनोविश्लेषण को आधार बनाकर अति नवीन प्रयोग किए, जहां हिन्दी कहानी की एक नवीन धारा का सूत्रपात हुआ । तात्पर्य यह है कि इस युग में हिन्दी कहानी अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं को पार कर वहां पहुंच गई जहां से हमें इसके श्रेष्ठ रूप के दर्शन होते हैं ।" [36]

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी [1936 - 1947] :---

प्रेमचन्दोत्तर युग में भी प्रेमचंद के समय के अनेक लेखक कहानी सुलझाने में कार्यरत रहे हैं । जैनेन्द्र, अज्ञेय तथा इलाचंद्र जोशी मनोवैज्ञानिक कहानी लेकर अग्रसर हुए हैं । उन कहानीकारों में हमें प्रसाद जी की अन्तर्मुखता के दर्शन होते हैं । प्रेमचंद और जैनेन्द्र की कहानी-कला के अंतर को स्पष्ट करने के लिए जैनेन्द्र की "पत्नी" कहानी को देख जाना चाहिए । "पत्नी" कहानी का पति कालिन्दीचरण एक क्रान्तिकारी देशभक्त है । यहां विषय ही ऐसा है कि बाह्य घटनाओं को पूरा अवकाश मिल सकता था परन्तु यहां पर भी जैनेन्द्र जी ने कालिन्दीचरण की क्रान्तिकारी जीवन की घटनाओं का उल्लेख न करते हुए उसकी पत्नी के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को ही सामने रखा है । इस प्रकार लेखक घटनाओं के स्थान पर मानसिक क्षणों के निरूपण में अधिक दिलचस्पी रखता है । जैनेन्द्र के उपरान्त अज्ञेय जी प्रेमचंदोत्तर समय के एक मुख्य कहानीकार हैं । प्रसाद जी की भांति उनका व्यक्तित्व भी कवि और कथाकार उभय का है और उनके कहानीकार में कहीं-कहीं हमें उनके कवि के भी दर्शन हो जाते हैं । डॉ० भोलाभाई पटेल ने अज्ञेय जी के सन्दर्भ में लिखा है --"प्रेमचन्द और प्रसाद इन दोनों में से प्रसाद का अनुसरण ही हम अज्ञेय के आरम्भिक साहित्य में पाते हैं । अज्ञेय की कहानियों में विषय की दृष्टि से एकदम पार्थक्य होने पर भी दृष्टि-भंगिमा और भावभंगि प्रसाद की ही परिलक्षित होती है । जहां तक काव्यात्मकता का प्रश्न है, प्रसाद के अतिरिक्त कवि रवीन्द्रनाथ का भी अज्ञेय पर प्रभाव है । "अमरवल्लरी" जैसी कहानी रवीन्द्रनाथ की किसी भी कहानी का स्मरण कराती है ।" [37] किन्तु प्रभाव ग्रहण के बावजूद अज्ञेय जी हिन्दी

कहानी में विषय-वस्तु एवं भाषा शैली शिल्प दोनों दृष्टियों से नए क्षितिजों का उद्घाटन करते हैं । बहुश्रुत एवं बहुपठित होने के कारण अज्ञेय जी में विषय एवं दृष्टि की व्यापकता परिलक्षित होती है । जहां प्रेमचंद में हमें उत्तर - भारतीय ग्रामीण जीवन, प्रसाद जी में स्वर्णकालीन भारत के दर्शन होते हैं वहां अज्ञेय जी की कथा-सृष्टि में चीन, रूस, तुर्की, क्यूबा, आदि देशों के क्रांतिकारी तथा हमारे देश के उच्चवर्गीय शिक्षित संभ्रान्त लोगों का जीवन दृष्टि-गोचर होता है । अज्ञेय जी में घटनाओं के स्थूलत्व का परिमार्जन भी दृष्टि-गोचर होता है । इस समय की उनकी चर्चित कहानियों में परम्परा, जयडोल, सेवक और देव, मेजर चौधरी की वापसी, शरणदाता, शीतल बाबू, गैंग्रिन, हालाबोन की बत्तखें आदि हैं ।

जहां आप और जैनेन्द्र में मनोविश्लेषण और चरित्रगत अंतरद्वन्द्व की प्रवृत्ति मिलती है वहां इलाचन्द्र जोशी में मनोविज्ञान के फ्रायडिय ‖ की स्थूलता मिलती है । जोशी जी में शास्त्र साहित्य पर हावी हो गया है । उनकी कहानियों में "खण्डहर की आत्माएं, डायरी के निरस्त पृष्ठ, रोगी, परित्यक्ता आदि उल्लेखनीय कही जा सकती हैं । यशपाल समीक्षा-काल के एक प्रमुख कहानीकार हैं । उनकी कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के साथ प्रगतिवादी या मार्क्सवादी सिद्धान्त भी जुड़ गए हैं । निम्नमध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग के जीवन का अत्यंत सहज स्वाभाविक चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है । उनकी कहानियों कहीं-कहीं वर्ग संघर्ष के संकेत भी मिलते हैं । मार्क्सवादी चिंतक होने के कारण वे हर प्रकार के शोषणों के खिलाफ अपनी आवाज को बुलंद करते रहे हैं । धर्म शास्त्र, तथा दकियानूसी परम्पराओं के वे जबरदस्त विरोधी रहे हैं । परन्तु उनकी कहानियों में कहीं-कहीं विचार कला पर हावी हो गया है वहां पर प्रचारात्मकता की बू आती है, परन्तु जहां वे कहानीकला एवं विचारमय सन्तुलन बना पाए हैं वहां उनकी कहानियां कला की दृष्टि से उत्कृष्ट बन पड़ी हैं । उनकी बहुचर्चित कहानियों में "शर्त, पर्दा, दुःख, चारआने, वर्दी, शिवपार्वती, कर्मफल, खच्चर और आदमी, सच बोलने की भूल, करवा का व्रत, प्रभृति मुख्य हैं ।

इस युग के अन्य कहानीकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, चंद्रगुप्त विद्यालंकार भगवती चरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर, आचार्य चतुरसेन,

वृंदावनलाल वर्मा, विष्णु प्रभाकर, पांडे बेचन शर्मा उग्र, कमल जोशी, भैरव - प्रसाद गुप्त , अमृतराय, आदि मुख्य हैं । आलोच्य समय की उक्त लेखकों की चर्चित कहानियों में विष्णु प्रभाकर कृत "धरती अब भी घूम रही है, अधूरी कहानी अभाव, मेरा वतन आदि कहानियां । अश्क जी द्वारा प्रणीत पिंजरा, खिलौना, पलंग आदि कहानियां । चंद्रगुप्त विद्यालंकार कृत "डाकू, तीन दिन , आदि कहानियां मुख्य हैं । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रेमचंदोत्तर काल में कथ्य शिल्प एवं भाषा तीनों स्तर पर कहानी में नए प्रयोग हुए हैं जिसने स्वातंत्र्योत्तर कहानी निर्देश में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : §1947§ :---

वैसे साहित्य के क्षेत्र में जहां तक विभिन्न काल-खण्डों का तथा उनकी समय-सीमाओं का प्रश्न है वे water type compartment से नहीं होते कि जहां विभाजक रेखाएं एकदम स्पष्ट हों । साहित्य में किसी प्रवृत्ति के प्रारम्भित होने से पूर्व उससे सम्बद्ध स्थितियां आकार लेने लगती हैं और किसी प्रवृत्ति के पूर्णरूपेण जम जाने पर भी दूसरी प्रवृत्तियां अपने क्षिणतोई रूप में भी प्रवाहित तो रहती ही हैं । सन् 1947 में हमें स्वाधीनता प्राप्त हुई और स्वाधीनता : प्राप्ति के साथ ही साहित्य जगत या कला जगत में सब कुछ बदल गया ऐसा हम नहीं कह सकते, न कभी ऐसा हो सकता है । परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति की घटना हमारे देश के इतिहास की एक महत्वपूर्ण और म घटना है । अतः साहित्य तथा कला-जगत में उसे वे एक सीमा-चिन्ह के रूप में अंकित किया जाय । उसमें अनुपयुक्त कुछ भी नहीं है । स्वातंत्र्योत्तर काल में भी पूर्वकालीन परम्परा के जैनेन्द्र, अज्ञेय , इलाचंद्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, विष्णुप्रभाकर, प्रभृति लेखक तो कहानी विधा में रचनारत ही रहते हैं परन्तु उनके साथ ही नए लेखकों का प्रवेश भी होता रहता है । स्वातंत्र्योत्तर काल में उभरने वाले इन लेखकों में सर्वश्री निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, उषा - प्रियंवदा, रमेश बक्षी, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, रामकुमार, भीष्म साहनी फणीश्वरनाथ रेणु, मारकन्डेय, डा० शिवप्रसाद सिंह, डा० रामदरश मिश्र,

शैलेश मटियानी, अमरकांत, धर्मवीर भारती, शेखर जोशी, अमृतराय, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर , दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, पंकज बिस्ट, मृणाल – पांडे , मृदुला गर्ग, मालती जोशी , कृष्णा अग्निहोत्री, मेहरून्निशा परवेज, गोविन्द मिश्र, कांतानाथ, अब्दुल बिस्मिल्लाह, चित्रा मुदगल, दीप्ती खंडेलवाल, कुसुम अंसल, मंजुल भगत, सूर्यबाला, बटरोही , बल्लभ डोभाल, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल , रवीन्द्र त्यागी, सुदर्शन मजीठिया, डा० रोहिताश्व, क्षमा शर्मा, विजयदान देथा, मंजुर ऐऐ श्याम, जितेन्द्र ठाकुर, पन्नीसिंह , शैलेन्द्र सागर, संजय सहाय, उदय प्रकाश, महेन्द्र रंगा, दीप्ति प्रकाश , प्रभा खेतान, अब्बास रजा, स्वयं प्रकाश, अमरीक सिंह दीप, महेश कटारे, योगेश भटनागर, विश्व जीत, सुरबजीत, तपन बेनर्जी, चंद्रकिशोर , जायसवाल, ओमप्रकाश बाल्मीकि, शंकर पुणे, ताबेकर, लतीफ घोंघी, डा० पारूकान्त देसाई आदि अनेक नए कहानीकार कहानी को नई विभिन्न मुद्राएं तथा भंगिमाओं के साथ आ रहे हैं हमारा आलोच्य कहानीकार भी इसी काल सीमा के अन्तर्गत आता है । स्वतंत्रता पूर्व, विशेषतः भारतेन्दु युग में हास्य प्रधान कहानियां भी उपलब्ध होती थीं । परन्तु इधर स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यंगय कहानी एक विधा के रूप में उभरकर आई है । ऊपर जिन कहानीकारों का उल्लेख हुआ है उनमें हरिशंकर परसाई, शरद जोशी श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्र त्यागी, सुदर्शन मजीठिया, शंकर पुणें ताबेकर, लतिक घोंघी, तथा डा० पारूकान्त देसाई, "कबीरा", डा० गंगा प्रसाद विमल, राकेश वत्स्य, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह तिरूपमा, सेवती, श्रवण कुमार, सेरा यात्री, ईब्राहिम शरीफ, विभु कुमार, शिला रोहेकर, राजी सेठ, सुरेश सेठ, रमेश बत्रा, विरेन्द्र मेहन्दीरत्ता, धीरेन्द्र अस्थाना, हेतु भारद्वाज, डा० असगर वजाहत, जैसे लेखकों ने समीक्ष्यकाल – सीमा में व्यंग्य कहानियों का सृजन किया है ।

यहां एक तथ्य उल्लेखनीय रहेगा कि इस कालखण्ड में कहानी की शिल्प संरचना को लेकर, उसके "कहानीपन" को लेकर अनेक वाद, नाम और नारे उछाले गए हैं । पुरानी कहानी के उपरांत "कहानी" और "नई कहानी" तक तो गनीमत है परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में किसी भी विधा को लेकर उसके नाना भेदो व उपभेदों की बात नहीं आई होगी उतनी कहानी के भेदोप-

भेद के विषय में आई है । इसका एक कारण यह भी रहा है कि कहानी को लेकर चलने वाली पत्रिकाओं ने 2-3 साल के अन्तराल में कहानी को लेकर ऐसी फतवेबाजी चलाई है । नई कहानी पच्यातोत्तरी हिन्दी कहानी, साठोत्तरी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहजकहानी, सक्रिय कहानी, समानांतर कहानी समकालीन कहानी, आंग्ली कहानी,[38] साहित्यिक कहानी, जनवादी कहानी, लघुकहानी, नाना नानी कहानी, ग्राम कहानी, नगर कहानी, कस्बाई - कहानी , आत्मभोग की कहानी, वैज्ञानिक कहानी, त्रिकोण कहानी, अगले - दशक की कहानी, समुद्र पार की कहानी, महानगरीय कहानी, ग्रामभीत्तिय कहानी, पहाड़ी कहानी, मैदानी कहानी, कवितानुमा कहानी, अस्वीकृत कहानी, क्रुध कहानी, भूखी कहानी, निरायाश कहानी, सायास कहानी, अनाम कहानी, अकथा, ताजी कहानी, आज की कहानी, लम्बी कहानी [39] आदि आदि । परन्तु ये सब नारे रचनात्मक वैयक्तिक एवं वैचारिक लेखन की क्षमता के अभाव में अल्पजीवी होकर रह गए । वस्तुतः प्रेमचंदकालीन कहानी के बाद शिल्प संरचना की दृष्टि से हम "नई कहानी" को थोड़ा-सा अलगा सकते हैं । सन् 1950 के आस पास डा० नामवर सिंह ने इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली कहानी पत्रिका में कहानी विषय के कुछ लेख कहानी विधा के बारे में लिखे थे । जिसमें उन्होंने सर्वप्रथम "नई कहानी" की मुहिम को आगे बढ़ाया था और निर्मल वर्मा को प्रथम नए कहानीकार के रूप में स्थापित किया था । [40]

कहानी के विकास के सन्दर्भ में जो अनेक कहानी आन्दोलन खड़े हुए उसकी एक विचित्रता यह है कि वहां कहानी के रूपबंध व प्रकार को लेकर सामाजिक, ऐतिहासिक, समाजवादी, आंचलिक, पौराणिक, ऐसे भेद दृष्टि - गोचर नहीं होते हैं और अनेकानेक वादों के रहते उसके नामों के क्षेत्र में एक प्रकार की अराजकता-सी दृष्टिगत होती है ।

वस्तुतः स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत कहानी के क्षेत्र में "नई कहानी" को एक आन्दोलन जैसी मान्यता प्राप्त हुई । यह केवल "नई कविता" की प्रतिक्रिया न थी परन्तु फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती , निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, शेखर जोशी जैसे अनेक कहानीकार आए जिनकी कहानियां बदले हुए यथार्थ के साथ नए अनुभव संबंधों को अधिक प्रामाणिक और

अकृत्रिम भाषा में व्यक्त करती है । इन लेखकों ने कहानीपन की यथासंभव रक्षा करते हुए वस्तुदृष्टि और रूप की नवीनता का परिचय दिया । तीसरी कसम, रसप्रिया, लालपान की बेगम, पंचलाइट, जैसी रेणु की कहानियां आंचलिकता की रंगत लेकर आती हैं, खेतों के धान झरते फूलों की गंध और गौने की साड़ी की गमक एक विशिष्ट प्रकार का सौन्दर्यबोध और लालित्य को लेकर आते हैं । धर्मवीर भारती, गुल की बन्नों जैसे चरित्रों की सृष्टि करते हुए मानव यातना के प्रति एक गहरी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया जगाते हैं । इस दौर में रांगेय राघव कृत "गदल" मारकन्डेय कृत "गुलरा" तथा "हंसा जाय अकेला", शिवप्रसाद सिंह कृत करमनासा की हार, अमरकांत कृत जिंदगी और जोंक, डिप्टीकलक्टरी, हत्यारे, उषा प्रियंवदा कृत वापसी, दोपहर का भोजन आदि कहानियां नई कहानियों के रूप में चर्चित रही हैं ।

मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर की चर्चा नई कहानी आन्दोलन में विशेष रूप से हुई है । "मलबे का मालिक", मिसपाल, आर्द्रा, आदि कहानियों में मोहन राकेश ने बहुस्तरीय यथार्थ को व्यक्ति की दृष्टि से उकेरा है । "खेल खिलौने, जहां लक्ष्मी कैद है, प्रतीक्षा, टूटना, छुआछू, प्रभृति कहानियों में राजेन्द्र यादव ने शिल्पगत सतर्कता के साथ चरित्रों की मानसिक जटिलता का परिचय दिया है । राजेन्द्र यादव के लिए कहानीकार की समस्या विषयबोध से पहले अपने अस्तित्व बोध की है, जीवन और परिवेश के प्रति उसकी धारणा और दृष्टिकोण की है ।[41] कमलेश्वर की कहानियों में ऐतिहासिक दृष्टिबोध, नवीन रूपबंध का प्रयास, कहीं-कहीं लोककथा की पृष्ठभूमि, मध्यवर्गीय परिवार की वास्तविकता तथा महानगरीय परिवेश में मनुष्य के भयावह अमानवीकरण इत्यादि को रेखांकित किया जा सकता है । राजा निरबंसिया तथा दिल्ली में एक मौत आदि कहानियों को इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है । भीष्म साहनी की "चीफ की दावत" नामक कहानी यथातथ्य परिस्थिति की व्यंग्यात्मक क्रूरता को उजागर करती है । हर अटपटे समाज को छिपा लेने की सजग चतुर युक्ति सोच लेने पर श्याम नाथ का ध्यान बूढ़ी मां की ओर जाता है तो वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं । समाज की स्थिति मेंआते ही मां का चरित्र अत्यंत दयनीय हो उठा है । भौतिक उपयोगितावाद ने समूची मानव भावनाओं को लील लिया है और उसका अमानवीकरण

हो गया है । इन कहानियों को लेकर डा० देवीशंकर अवस्थी कुछ प्रश्न उपस्थित करते हैं--"परम्परा के रक्षक चाहें तो इन्हें चरित्र-प्रधान" कहानी के वर्ग में रखकर संतोष कर सकते हैं, किन्तु इस ऐतिहासिक परिवर्तन की उनके पास क्या व्याख्या है कि एक साथ पूरी की पूरी पीढ़ी सीधे जीते-जागते चरित्रों के अंकन की ओर चल पड़ी ? नए कहानीकारों ने अपने "निज अनुभवों का ही सहारा लेने का निश्चय क्यों किया ? इन लेखकों ने किसी बनी-बनाई विशेष - धारा को ज्यों का त्यों मानकर कहानियाँ ✶ क्यों नहीं बनाई ? क्या यह एक "प्रामाणिकता" की खोज नहीं है ।" [42]

निर्मल वर्मा की दृष्टि में अगर "नई कहानी" कुछ हो सकती है तो सिर्फ अँधेरे में एक चीख । उनकी "परिन्दे", "लंदन की एक रात" तथा "पहाड" जैसी कहानियां चर्चित रही हैं । "परिन्दे" एक गीतधर्मी कहानी है जिसमें चरित्र, वातावरण, कथानक इत्यादि अनुभव की भीतरी लय में रचे गए हैं और उसमें पूर्णरूपेण घुल-मिल गए हैं । "लंदन की एक रात" कठोर वस्तु-बोध की एक कहानी है तो "पहाड" में सादगी और सांकेतिकता का निर्वाह हुआ है । उषा प्रियंवदा कृत "वापसी" मानवीय रिश्तों के टूटने-बहराने की कथा-व्यथा है जो रूप की दृष्टि से पुरानी कहानी के निकट पड़ती है परन्तु अपने गैर रोमेन्टिक भाव-बोध तटस्थता तथा यथार्थ के स्वीकार के कारण उसकी गणना "नई कहानी" के अन्तर्गत होती रही है । रघुवीर सहाय की "सेब", जैसी कहानियां भी अपने इसी गैर-रोमेन्टिक भाव-बोध के कारण विश्रोत हैं ।

साठ के आस-पास उभरने वाले कहानीकारों ने असन्दिग्ध रूप से से प्रश्नात्मक दृष्टि का परिचय दिया है । इसके पहले की पीढ़ी में ऐतिहासिक मोहभंग की स्थिति प्रायः देखने में आती है परन्तु यह पीढ़ी इस अर्थ में नितांत भिन्न है कि उसके आसपास मोह की दुनिया निर्मित ही नहीं हुई , अतः इन कहानीकारों में एक विशेष प्रकार की निःसंगता के दर्शन होते हैं । इनकी कहानि में समकालीन युग के नए भयावह विडम्बनापूर्ण सम्बन्धों का साक्षात्कार दृष्टि-गोचर होता है । इन कहानियों का गद्य भी नवीनता और ताजगी का अनुभव कराता है । ऐसी कहानियों में ज्ञानरंजन कृत "घंटा" और "बहिरंग मन" , काशीनाथ सिंह कृत सुख, आखिरी रात, दूधनाथ सिंह कृत "रक्तपात, प्रबोध - कुमार कृत गांठ, रवीन्द्र कालिया कृत नौ साल छोटी पत्नी, महेन्द्र भल्ला कृत

लम्बी कहानी , एक पति के नोट्स आदि को ले सकते हैं । अकहानी और सचेतन कहानी के आन्दोलनों के थम जाने के बाद कहानी अधिक बुनियादी और जीवन से सरोकार रखने वाले परिवर्तनों और प्रश्नों से सम्बद्ध हुई है । डा. गंगाप्रसाद विमल , गिरिराज किशोर , विजय मोहन सिंह , गोविन्द मिश्र , ममता कालिया , विजय चौहान , प्रयाग शुक्ल , चित्रा मुद्गल आदि की कहानियां आज के जटिल सन्दर्भों को अपने-अपने ढंग से चित्रित कर रही हैं । नरेश मेहता , सर्वेश्वर दयाल तथा कुंवर नारायण जैसे कवि-कहानीकारों ने काव्यगुण-संपन्नता का परिचय देते हुए अपनी कहानियों में अनुभवों का प्रायः वह ढंग लिया है जिसे भावात्मक जमीं पर महसूस किया जा सके । कुंवर नारायण के संग्रह {आकारो} के आस-पास की कहानियां , कहानी की किसी परिचित जाति को ठेस पहुंचाकर एक रचनात्मक विस्फोट का प्रमाण देती है । वस्तुस्थिति का निर्मम साक्षात्कार ही वह भूमि है जहां आज की कहानी ने अपनी विशिष्ट सार्थक पहचान बनाई है । यह कहना न होगा कि हिन्दी कहानी ने विकास के हर मोड़ पर नवीनता का एक ऐतिहासिक सन्दर्भ छोड़ा है । और इस ऐतिहासिक नवीनता की पहचान हर दौर की श्रेष्ठ कहानियां कराती रही हैं ।

समकालीन कहानी :

"समकालीन" अंग्रेजी शब्द " Contemporary " का समानार्थक है , जिसका अभिप्राय है -- सम् + काल , अर्थात् जो काल या समय के "सम" या साथ-साथ हो । इस प्रकार "समकालीन" का सीधा अर्थ हुआ "समय के साथ " । समय का अपना एक सन्दर्भ होता है , उसकी अपनी एक इतिहास-दृष्टि होती है । इस सन्दर्भ और इतिहास-दृष्टि को पकड़ने की कलात्मक जद्दोजहद ही समकालीनता है । समकालीनता देशकाल के सभी सन्दर्भों से संपृक्त रहती है । समकालीनता ही वह बिन्दु है , जहां से साहित्यिक रचना अग्रसरित

होती है । समकालीनता केवल "आज" नहीं है । "आज" बीते हुए कल" से ही निर्मित हुआ है । मेरे निर्देशक डा. चारूकांत देसाई की निम्नलिखित पंक्तियां इस सन्दर्भ में स्मृति में कौंध रही हैं —

" आज न यों ही निपजा , बीते कल से प्रात ।
आज करेगा तय अभी , कैसी होगी प्रात ।।" [43]

इस प्रकार समकालीनता एक सार्थक-समृद्ध परंपरा है , संस्कृति है , अब "आज" भी है और दोनों "कल" भी — अतीत और भविष्य । डा. नामवरसिंह का इस संदर्भ में कथन है — " समकालीनता देशकाल से सम्बद्ध है , यानी ऐतिहासिक है , यानी काल-विशिष्ट है , सामयिक सन्दर्भ , मानवीय प्रसंग है , उसमें राजनीति को भावबोध द्वारा कहानी में रूपांतरित किया जाता है । /उसमें/ ऐतिहासिक दबाव भी है , विरोधीपक्ष को भी देखा-समझा है , इसके बिना समकालीनता नहीं हो सकती है । " [44] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि "इतिहास-दृष्टि " की समानता के साथ अपने वर्तमान पर , अपने आसपास पर , एक निरपेक्ष दृष्टिपात ही समकालीनता है । यहां डा. सुरेन्द्र चौधरी के विचार भी द्रष्टव्य रहेंगे — " समकालीनता की आत्मा को उन अंतरालों से झांकने की ज़रूरत है , जिनसे होकर या तो वह व्यतीत का अंग बन जाती है , या फिर भविष्य की संभावना । समकालीनता की इस दुहरी दुनिया के भीतर ही ~~xxx~~ रचना की कुछ संभावनाएं पैदा होती हैं ।" [45]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि "समकालीनता" समय-सापेक्ष होते हुए भी व्यापक परिवेश से जुड़ी रहती है । उसमें "आज" है , परन्तु उसका आज" चिरन्तन मानवीय प्रश्नों , मूल्यों और समस्याओं से निरंतर जूझता है । बरसों पहले लिखी गई कहानी अपने समय के सन्दर्भ में समकालीन थी । आज की कहानी आज के सन्दर्भ में समकालीन है ।

आज के समकालीन कहानीकारों में अरूण प्रकाश , अखिलेश ,

अब्दुल बिस्मिल्लाह , असगर वजाहत , उदय प्रकाश , संजय , काशी-नाथ सिंह , गिरिराज किशोर , चित्रा मुद्गल , नमिता सिंह , नासिरा शर्मा , पंकज बिष्ट , प्रियंवद , मालती जोशी , रमेशचन्द्र शाह , राजी सेठ , विजय , सुरेश उनियाल , स्वदेश दीपक , रूपसिंह चंदेल , शिव-मूर्ति , सुरेश कांटक , जयशंकर , जवाहरसिंह लवलीन , जया जादवानी, रामधारीसिंह दिवाकर , उमेश अग्निहोत्री , हरि भटनागर , जयनंदन, मंजुल भगत , अलका सरावगी, प्रेमकुमार मणि , महेश कटारे , रघु-नंदन त्रिवेदी , हीरालाल नागर , इंतजार हुसैन , मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीक , सुहेल वहीद आदि के नाम गिना सकते हैं ।

उपर्युक्त लेखकों की अनेकों कहानियों में समकालीन जीवन का यथार्थ विविध दृष्टिकोणों से आकलित हुआ है । दलित उत्पीड़न से सम्बद्ध "कुकुरमुत्ते" कहानी में कहानीकार विजय ने नट औरतों के लैंगिक-शोषण को रेखांकित किया है । कहानी की नायिका फुल्लो का कथन इसका साक्ष्य है — " नटिन की जिनगी भी कोई जिनगी है । ... कुतिया से भी बत्तर । दिन भर गली-गली , दुआरी-दुआरी फेरी लगाते फिरो । दस तरह की बात-गाली सुनो — दुरदुराई जाओ x x x भीख माँगती हूं तो मरदुये कहते हैं , अरे फुल्लो , ये जवानी किस काम आयेगी ... मुड़कटवे ऐसे घूर-घूर कर देखते हैं , अंखियन से बर्छी-भाला मारते हों .... भीख माँगने पर पइसा दो पइसा नहीं देता , वही देह छूने को अठन्नी-रूपया दिखाता है । पूछ लो और नटिनी से ... ये गोरे-गोरे बच्चे क्या इन काले-कलूटे नटों के हैं रे ? " [46]

कहीं-कहीं वर्ग-चेतना के नये स्वर भी सुनाई पड़ रहे हैं । जवाहरसिंह कृत कहानी " अपना-अपना महाभारत" में नंदलाल बुटाई को कुछ रूपये उधार देता है । रूपये की उगाही पर बुटाई कहता है — "हिसाब-किताब तो साफ हो चुका है , बाबू साब । ... तीन पुश्तों से हम आपके घर बेगारी करते रहे हैं ... बीच-बीच में कई बार दस-बीस रूपये करके भी देते रहे हैं । फिर भी क्या आपके अस्ती

रूपये का हिसाब-किताब बाकी है ? " [47]

संजय की कहानी "बैल बधिया" में जमींदार देवी चौधरी नचनियां से खेत जुतवाते हैं । बैल सींग मार देता है और उसकी आँतें बाहर निकल आती हैं । उसीमें उसकी मृत्यु हो जाती है । नचनियां के बाप को चौधरी ने कुछ उधार दे रखा था , उसीको चुकाने के लिए चौधरी नचनियां से बेगार करवाता था । अब उसकी नज़र उसके नाबालिग बेटे जयशंकर और उसकी पत्नी पर है । वह उन दोनों का संरक्षक बनना ×××× चाहता है और उसे अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में फंसाना चाहता है , परन्तु तब नचनियां की पत्नी निडर होकर जवाब देती है — " अपने बछड़े को बड़े सांड़ बनाइयेगा अउर हमरे बछड़े का बधिया करवाइयेगा । इहे न इरादा है , मालिक । ससुर के बाद हमरा मरद आपके हियां बैल बना , अब हमारे बेटे पर भी टकटकी लगाये हैं । ई आशा छोड़ दें मालिक । " [48]

कुछ लोग मानते हैं कि नारी-व्यथा की कथा अब पुरानी हो गई है , परन्तु यह वास्तविकता नहीं है । यह सही है कि नारी आज आगे बढ़ी है , कुछ वर्जित क्षेत्रों में उसने प्रवेश किया है , परन्तु वह बहुलांश नारी समाज का अत्यल्प हिस्सा है । नारी-व्यथा की कथाएं आज भी अनन्त हैं । उच्च वर्ग की नारी आगे बढ़ी है , अनेक कीर्तिमान उसने स्थापित किए हैं , परन्तु सामान्य नारी आज भी दलित , पीड़ित , शोषित और उपेक्षित है । इस संदर्भ में डा॰ ज्ञानवती अरोरा के विचार उद्धरणीय रहेंगे । यथा- "समकालीन कहानी ने उच्चवर्ग की नारी के यथार्थ को भी देखा है जो भौतिकता की चकाचौंध में सुखी दिखाई पड़ती है , उसकी व्यथा आम नारी से ×××× नितान्त भिन्न है । आम नारी जीवन की आम ज़रूरतों के लिए भी संघर्ष करती है । जीवन भर संघर्ष करती है , जीती है और संघर्ष करती है । नियम , कायदे और कानून इसीके लिये हैं । इसके जन्म पर शिक्षित माता-पिता

भी , आज भी प्रसन्न नहीं होते । पुत्र की ही कामना करते हैं । जन्म-पूर्व-लिंग-परीक्षण में ही नारी को समाप्त कर दिया जाता है । विज्ञान की प्रगति का यह एक नया नतीजा है , जिसने नारी के महत्व को और अधिक समाप्त कर दिया है । समाज , सरकार, सत्ता , महिला-आयोग और नारीवादी उसके अधिकारों और अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हैं , परन्तु दूसरी ओर संसार में आने से पूर्व ही महाविनाश× महाविनाश । " 49

अतः समकालीन कथाकार उभय-वर्ग की नारियों के दर्द को निरपेक्ष वास्तविकता में उकेर रहे हैं । "एक सांवली लड़की " [अमृतराय] , " तिरिया चरित्तर " [शिवमूर्ति] , "घर चलो दुलारीबाई " [संजीव] , "बोल री कठपुतली" [मालती जोशी], "बावली" [नासिरा शर्मा] , "चांदनी के फूल " [नमितासिंह], "फिर हार गई वह " [नमितासिंह] , "रस-बेरस" [जयनंदन], "वारन हेस्टिंग्स का सांड " [उदय प्रकाश] , "हासिल" [राजेन्द्र यादव] प्रभृति कहानियों को इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है ।

उत्तर आधुनिकतावादी कहानी :

इधर की हिन्दी-गुजराती आलोचना में उत्तर-आधुनिकता-वाद [Post-Mordenism] की विशेष रूप से चर्चा हो रही है । हमारे आलोच्य कथाकार शैलेश मटियानीजी इन सभी कहानी-आंदोलनों के साक्ष्य रहे हैं , अतः संक्षेप में उस पर भी विचार कर लेना समुचित होगा ।

पश्चिमी योरोप और अमेरिका के चिन्तक पिछले कुछ वर्षों से आधुनिकता की अपेक्षा उत्तर-आधुनिकता को ज्यादा महत्व देने लगे हैं । वस्तुतः साहित्य एवं कला-जगत में वैचारिक क्रिया-प्रतिक्रिया

का दौर तो चलता ही रहता है । आधुनिकता-संबंधी आलोचना इधर अधिक बौद्धिक , अधिक बोझिल , अधिक तार्किक हो चली थी । इन सबका नकार इसमें देखा जा सकता है । डा. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डा. सुधीश पचौरी , डा. अभय मौर्य प्रभृति विद्वानों ने इस पर पर्याप्त चिंतन किया है ।

उत्तर-आधुनिकतावाद आधुनिकता तथा इतिहास-बोध को नकारता है । वह यथार्थवाद के सभी रूपों और शैलियों को कला-मात्र के लिए घातक समझता है । उसमें जीव , जगत , प्रकृति और मनुष्य के बीच नये संबंधों को तलाशने का एक प्रयास दृष्टिगोचर होता है । उत्तर-आधुनिकतावादियों का मानना है कि मनुष्य और प्रकृति के संबंधों को नये सिरे से जोड़ने की आवश्यकता है । प्रकृति का विकास के नाम पर जो विवेकहीन दोहन हो रहा है उसका वे विरोध करते हैं । औद्योगीकरण और विज्ञान को भी अब संशय की दृष्टि से देखा जा रहा है ।

इस संदर्भ में डा. कैलाश वाजपेयी का मत है कि " उत्तर-आधुनिकता नैतिक-अनैतिक के चक्करों में न पड़कर सिर्फ़ उपलब्धि की कायल है ; इसलिए औद्योगिक प्रगति के ही समानान्तर अपराध-उद्योग का भी बोलबाला है जिसकी गिरफ्त में नेता , अभिनेता , नौकरशाह, व्यापारी , कारीगर और हरकारे भी आ गये हैं । " [50] संक्षेप में खंडित मनःस्थितियों , अव्यवस्था , असम्बद्धता , अनैतिकता , दायित्वहीनता , केन्द्रहीनता आदि जो पूंजीवादी व्यावसायिकता के परिणाम हैं उसको नकारने का भाव यहां दृष्टिगत किया जा सकता है । उपभोक्तावादी सभ्यता ने मानव-गरिमा को जो क्षति पहुंचायी है उसकी यहां चिन्ता है ।

"फ्लेग स्टेशन " ‡ सुरेश सेठ ‡ , " मिलते रहना" ‡सुरेन्द्र अरोड़ा‡ , "परिचय" ‡ नमिता सिंह‡ , "वजूद" ‡ ज्ञानप्रकाश विवेक‡, "सबील" ‡ विजय‡ आदि कहानियों में हमें उक्त प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं ।

युगीन परिवेश :

शैलेश मटियानीजी पिछले चार दशकों के कहानी साहित्य के स्रष्टा और भोक्ता रहे हैं । लेखक का अपना जो समय होता है , उसका प्रत्यक्ष वा परोक्ष प्रभाव उसके लेखन पर पड़ता ही है । मटियानीजी की गणना स्वातंत्र्योत्तर लेखकों में होती है । स्वाधीनता-प्राप्ति ,भारत-पाकिस्तान विभाजन , महात्मा गांधी की हत्या , सरदार पटेल का निधन , प्रजासत्ताक गणतंत्र की स्थापना , दो-दो पाकिस्तानी आक्रमण , भारत-चायना वार , नेहरू का मोहभंग , नेहरू का निधन , नेहरू के पश्चात् एक सशक्त नेता के रूप में लाल बहादुर शास्त्री का उभरना , 1965-66 के पाकिस्तानी वार में पाकिस्तान के दांत खट्टे करना , उस युद्ध के हीरो लाल बहादुर शास्त्री का ताशकंद-करार के दौरान आकस्मिक शंकास्पद निधन , लौह-मानस-महिला इन्दिरा गांधी का प्रधानमंत्री होना , लोकप्रियता के शिखरों को सर करना , इलाहाबाद हाईकोर्ट का श्रीमती इन्दिरा गांधी के चुनाव के खिलाफ़ फैसला , आपात्कालीन स्थिति की घोषणा , उसका विपरीत परिणाम , श्रीमती इन्दिरा गांधी और संजय गांधी का बुरी तरह से हारना , जयप्रकाश नारायण के मार्गदर्शन में जनता-दल की स्थापना , लोहिया का ग़ैर-कांग्रेसवाद , कांग्रेस-विरोधी ताकतों का एकजुट होना , मोरारजीभाई देसाई के नेतृत्व में प्रथम ग़ैर-कांग्रेसी जनता-दल सरकार का गठन , आपसी टकरावों तथा वैचारिक द्वन्द्वों के कारण तीस महीने के अल्पकाल में जनता-सरकार का पतन , शाह-कमीशन , इन्दिरा गांधी का पुनरागमन , संजय गांधी का विमान दुर्घटना में निधन , इन्दिरा गांधी की हत्या , शिख-हत्याकांड , राजीव गांधी के नेतृत्व में सरकार का गठन , बोफोर्स काण्ड के कारण राजीव गांधी की मि. क्लीन की छबिका धूमिल होना , वी.पी. सिंग के नेतृत्व में पुनः जनता-दल मोर्चे का शासन , मंडल-कमीशन रिपोर्ट , मंडल-कमंडल विवाद , एक जमाने में यंग-टर्क के रूप में प्रसिद्ध चन्द्रशेखर

का प्रधानमंत्री होना , अल्प समय में सरकार का पतन , पमालू विराती नरसिंहराव के रूप में प्रथम दक्षिण भारतीय का प्रधानमंत्री होना , किसी तरह पांच वर्ष पूरे करने , अस्थिर सरकारों का दौर , बहुपक्षीय सरकारों का दौर , देवगौड़ा , आई.के. गुजराल , अटल बिहारी वाजपेयी आदि का प्रधानमंत्री होना जिनमें प्रथम दो जनता-दल तथा तीसरे भाजपा के प्रधानमंत्री हैं ; अनेक परस्पर विरोधी दलों की सहायता से केन्द्र में भाजपा का प्रथम बार सत्ता में आना जैसी अनेकानेक घटनाएं इन पचास वर्षों में हुई हैं ।

इन पचास वर्षों में गांधीवादी नेताओं और मूल्यों का निरन्तर क्षरण हुआ है । जातिवाद और सम्प्रदायवाद ने जोर पकड़ा है । राष्ट्रीय कक्षा के नेताओं के स्थान पर स्थानीय एवं सीमित दायरों के नेता उभरे हैं । राजनीति का अपराधीकरण हुआ है । राजकारण और धर्मकारण मिल गये हैं । कांशीराम , मायावती , लालूप्रसाद यादव , मुलायमसिंह यादव , बंगरप्पा , बादल , मुरलीमनोहर जोशी , लालकृष्ण अडवानी , बाल ठाकरे , सिंघल जैसे नेताओं का उदय इस समय में हुआ है । यह समय अनेक राजनीतिक एवं आर्थिक घोटालों एवं षडयन्त्रों का भी रहा है । दो-दो प्रधानमंत्रियों की हत्या इस दौरान हुई है — इन्दिरा गांधी और राजीव गांधी । मुद्दों पर आधारित राजनीति खत्म हुई है । राजनीति तकवादी लोगों का झमेला होती जा रही है । सत्ता की यह रांड नंगा नाच नचा रही है । नेताओं का दोमुंहापन भी नहीं , अनेक मुंहापन सामने आ रहा है । "नीति-नियम सब कर रहे , हमको टाटा-बाय " जैसी परिस्थिति का निर्माण होता जा रहा है । "नेता" आदर का नहीं , बलगमी गाली का प्रतीक होता जा रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि देश की ऊर्जा तो स्वाधीनता आंदोलन में ही चूक गई ।

" लड़ते-लड़ते मर गया , सैंतालीस में देश ।
गिदड़ गीध चबा रहे, बदल कबिरा भेश ।।" 51

मूल्य-जगत में घोर अराजकता छा गई है । अच्छे जीवन-मूल्य मिट्टी में मिल रहे हैं । अपमूल्य या निर्मूल्य जीवन पर हावी हो रहे हैं । चारों तरफ भ्रष्टाचार , कदाचार और दुराचार का बाज़ार गर्म है । आतंकवाद और साम्प्रदायिक हिंसा निरन्तर बढ़ रहे हैं । माफियागिरी और गुण्डाराज पनप रहा है । इसका एक व्यंग्यात्मक चित्र धूमिल की कविता में मिलता है —

" क्या आज़ादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है ? " [52]

या

"सबसे अधिक हत्याएं
समन्वयवादियों ने कीं ।
दार्शनिकों ने
सबसे अधिक जेवर खरीदा ।
x x x
हिजड़ों ने भाषण दिए लिंग-बोध पर ,
वेश्याओं ने कविता पढ़ी —
आत्म-शोध पर .... " [53]

एक गुजराती गज़ल का शेर है —

" ईश्वर तारी आ परीक्षा लेवानी प्रथा सारी नथी ;
जे छैक सारा छे एमणी दशा सारी नथी । "

अर्थात् जो कुछ भी अच्छे लोग हैं , उदार-सत्यवादी हैं , भले हैं ; उनकी स्थिति अच्छी नहीं है । ज़िन्दगी सस्ती हो रही है , चीजें महंगी । सिनेमा और टी.वी. ने संस्कृति को लील लिया है । कला के नाम पर अश्लीलता को बेचा जा रहा है । जीवन के तमाम पहलुओं का व्यापारीकरण हो गया है । पर्यावरण गड़बड़ा गया है । पृथ्वी पर का जीवन विनाश के मुहाने पर है । मौत के सौदागर राज कर रहे हैं । बेचारी जनता फटी आँखें इस बदहाली को देख और झेल रही है ।

शैशवकालीन प्रभाव :

मनुष्य के जीवन में उसकी शैशव अवस्था का महत्व अपरिहार्य होता है । मानव-जीवन की बहुत-सी गतिविधियों को हम आकस्मिक या अकारण समझते हैं, परन्तु ऐसा नहीं होता । मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि अकारण कुछ भी नहीं होता । जन्म से लेकर मासूम अवस्था तक जो नानाविध अनुभव होते हैं, वे मनुष्य के अचेतन-मन में संगृहीत होते रहते हैं, जिसे मनोवैज्ञानिक "लिबिडो" कहते हैं । यह "लिबिडो" मानव-अनुभव का मानो संग्रहालय है । इसमें ढेर सारी स्मृतियां, ढेर सारे प्रभाव असंकलित एवं अव्यवस्थित रूप में पड़े रहते हैं जो मानव-व्यवहार (बीहेवियर) को परिचालित करते हैं । इनमें भी शैशवकालीन प्रभावों का विशेष महत्व होता है । ये प्रभाव दीर्घकालीन एवं दीर्घसूत्री होते हैं । मानव-जीवन की यह वह अवस्था है, जिसमें यदि थोड़ी-सी तरी मिल जाय तो उसका जीवन संवर जाता है । लेखक या कवि के लिए तो शैशवकालीन प्रभावों का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि और लोगों की तुलना में वह अधिक संवेदनशील होता है । इस अवस्था में उसके मन पर जो प्रभाव पड़ते हैं, उसका असर उसके लेखकीय जीवन पर भी पड़ता है ।

प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों में शिशु-जीवन की त्रासद स्थितियों का परिमाण पुष्कल है, क्योंकि प्रेमचन्द का शैशव सुखद प्रकार का कभी नहीं रहा । आठ वर्ष की अवस्था में माता की मृत्यु और उसके पश्चात् विमाता के त्रासों का एक अनवरत सिलसिला । मातृ-वात्सल्य का अभाव प्रेमचन्द को सदैव सालता रहा है । "कर्मभूमि" उपन्यास का नायक अमरकान्त एक स्थान पर कहता है — " ज़िन्दगी की वह उम्र जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा ज़रूरत होती है, बचपन है । उस वक्त पौदे को तरी मिल जाये तो ज़िन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मज़बूत हो जाती हैं । उस वक्त ख़ुराक न पाकर

उसकी ज़िन्दगी ख़ुश्क हो जाती है । मेरी माता का उसी जमाने में देहान्त हुआ और तब से मेरी रूह को ख़ुराक नहीं मिली । वही भूख मेरी ज़िन्दगी है । मुझे जहां मुहब्बत का एक रेज़ा भी मिलेगा , मैं बेअख़्तियार उसी तरफ जाऊंगा । क़ुदरत का अटल कानून मुझे उस तरफ ले जाता है । उसके लिए अगर मुझे कोई ख़तावार कहे तो कहे । मैं तो ख़ुदा ही को जिम्मेदार कहूंगा । .... दुनिया में सबसे बदनसीब वह है , जिसकी मां मर गयी हो । " [54] यहां अमरकान्त के रूप में मानो प्रेमचन्द ही बोल रहे हैं ।

शैशवकालीन प्रभाव किसी लेखक को किस हद तक प्रभावित कर सकते हैं , उसका एक अच्छा उदाहरण अमरिकी लेखक हेमिंग्वे के के जीवन से उपलब्ध होता है । हेमिंग्वे के माता-पिता की प्रकृति में जमीन-आसमान का अन्तर था । प्रकृति की इस भिन्नता के कारण माता-पिता के जीवन में सदैव झगड़े व टंटे-फसाद चलते रहते थे । हेमिंग्वे के पिता को माता की मर्जी के सामने प्रायः झुकना पड़ता था , जिसके कारण उनकी स्थिति कुछ-कुछ "हेनपेक्ड हसबण्ड"-सी हो गई थी । इसका असर शिशु हेमिंग्वे पर ख़ूब पड़ा है और परिणाम-स्वरूप हेमिंग्वे के स्त्री-चरित्र प्रायः क्रूर तथा माया, ममता, करुणा जैसे नारी-सहज गुणों से अलिप्त मिलते हैं । इस सन्दर्भ में उनके एक आलोचक डा. आर.टी. जैन के विचार द्रष्टव्य रहेंगे — "

"He was much More influenced by the Conflict between his music loving mother and his father who loved out door life and revered Courage. This Conflict and in his mother dominating over her husband and reducing him to a henpecked husband on heminwey this situation had profound influaced. it bread in him an intence disturb of the dominiating type of human and might have been responsible for his broken marriage with poulain his Secound wife. In terms of litarary expression it laid Hemingwey either to portray women threw—

the medium of a wishfull fillament are in the form of dominiating vigarous whems. He contemped heartly and fortrightly. Infact in his Novels Hemingway has not been able to Endow any American women with even a Single loveble quality." 55

शैशवकालीन अनुभवों का एक लेखक के जीवन में क्या महत्व होता है उस संदर्भ में रोबर्ट लिडले ने कहा है — "It has been generally dictated to him by his nature are his early environment. The importance of Early environment in determing a writer range could be proved over and over again." 56

हमारा शोध-विषय शैलेश मटियानी द्वारा निरूपित नारी के विविध रूपों से सम्बद्ध है, अतः लेखक के शैशवकालीन जीवन पर एक दृष्टिपात करना अप्रासंगिक न होगा ।

मटियानीजी का जीवन संघर्ष की एक अनवरत व अनथक यात्रा है । यह जो शब्दों का व्यापार वे कर सके हैं, उसके मूल में यह संघर्ष और यातना ही है । मेरे निर्देशक डा. पारूकांत देसाई का एक शेर यहां स्मृति में झिलमिला रहा है —

"मिले थे गम कई तो फिर यारो हम संभल बैठे
मिलीं होतीं अगर खुशियां तो कितने बेजुबां होते ।" 57

मटियानीजी को जो सरस्वती का वरदान प्राप्त हुआ है, उसका उत्स उनकी शैशवकालीन यातनाओं, पीड़ाओं और अवमाननाओं तथा दूसरों तथा अपनों द्वारा किए गए अपमानों में देखा जा सकता है । मटियानीजी उन चन्द साहित्यकारों में हैं जो यह कहने की हिम्मत रखते हैं कि "साहित्यकार को सिर्फ कृतित्व के ही नहीं प्रत्युत् व्यक्तित्व के निकष पर भी आंकना आवश्यक है ।" 58

शैलेश मटियानी का जन्म 14 अक्तूबर सन् 1931 को अल्मोड़ा जिले के बाड़ेछीना गांव में हुआ था । उनका माता-पिता द्वारा दिया हुआ नाम तो रमेशचन्द्र था, शैलेश मटियानी तो उनका धारण किया

हुआ नाम है , परन्तु अब वे इसी नाम से जाने जाते हैं । नौ साल तक का बचपन बावजूद गरीबी के अच्छा गया । उम्र का यह दौर ऐसा होता है कि बच्चे को यदि मां-बाप और परिवार का प्यार मिले तो गरीबी का तो उसे पता ही नहीं लगता है । मटियानीजी का भी नौ साल तक का जीवन तो बेफिक्र और बादशाही ढंग से व्यतीत हुआ , परन्तु दसवें वर्ष से पीड़ाओं और यातनाओं की शुरूआत हो गई । दसवें वर्ष में उनके पिता ईसाई होकर एक अन्य स्त्री के साथ रहने लगे । धर्म-परिवर्तन तो कर लिया , परन्तु मृत्युपर्यन्त वे तड़पते रहे । उनकी इस तड़पन को मटियानीजी ने अनेक स्थानों पर शब्द-देह दिया है । "चन्द औरतों का शहर" उपन्यास तथा "कठफोड़वा" जैसी कहानियों में इसे लक्षित किया जा सकता है ।

अंतिम समय में बेटे को मिलने के लिए लोगों से प्रार्थना करना , रमेश [शैलेश] के पहुंचने पर प्राण त्यागना , अग्नि-संस्कार की इच्छा प्रकट करना , ईसाई नयी मां , इसे उसके भाई तथा समाज के प्रबल विरोध के बावजूद उनकी उस इच्छा की पूर्ति होना जैसी अनेकों घटनाओं का उल्लेख लेखक ने यदा-कदा" तथा "लेखक की हैसियत से" जैसी पुस्तकों में किया है । " मेरी तैंतीस कहानियां " की भूमिका में भी लेखक के शैशव पर प्रकाश डालने वाली कई घटनाओं का उल्लेख मिलता है । इस संदर्भ में उक्त पुस्तक की भूमिका में शैलेशजी लिखते हैं — " वय का बारहवां वर्ष कुछ ऐसा बायां सिद्ध हुआ था मेरे लिए कि उसी एक साल में माता-पिता दोनों के स्नेहाश्रय की शीतल छांव मेरे तिरछी टोपी पहनने वाले तकदीर के टेढ़े सिर पर से उठ गई । .... और मेरे छोरमुल्या [अनाथ-]- जीवन की तपन भरी अनिश्चित भविष्य-यात्रा आरम्भ हो गई थी । तब तक मैंने सिर्फ चौथी तक शिक्षा प्राप्त की थी । पांचवीं में प्रवेश पाकर लौट आना पड़ा था और एक बंधी-बंधायी-सी दिनचर्या आरंभ हो गई थी । सुबह उठकर नौले पानी भरने जाना , लौटकर

गाय भैंसें दुहना । गोठों का पर्स निकालना । कलेवा करके , गाय-बकरियों को लेकर , सेलना धनसार या सौंलखेत के वनों की ओर निकल जाना । "[59]

माता-पिता की मृत्यु के उपरांत तीनों बच्चों को — रमेश , उसका छोटा भाई और छोटी बहन — उनके चाचा-ताऊ के संरक्षण {9} में जीवन बिताना पड़ा । अनेक अपमान और अवमानना-ओं को बर्दाश्त करना पड़ता था । उनका परिवार जुआरियों का परिवार कहलाता था । खूब जुओं की "फड़ें" जमती थीं और खूब आमदनी होती थी । वैभव भी काफ़ी था । घर में दो-दो नौकर थे , पर तीसरे नौकर के रूप में रमेश को भी काम करना पड़ता था । पढ़ाई तो छूट ही गई थी । बकरियां चराते हुए रमेश उन स्कूल जाते हुए बच्चों को हसरत भरी नज़रों से देखता रहता था , तब अचानक एकदिन बाड़ेछीना के अपर-प्रायमरी के प्रधानाध्यापक लक्ष्मणसिंह गैलकोटी ने बालक रमेश के कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा था — " क्यों तुम्हारी भी पढ़ने की इच्छा होती है ? " जवाब में रमेश फूट-फूट कर रो पड़ा था ।[60]

उनका परिवार जुआरियों और बूचड़ों का परिवार था जिसमें आगे पढ़ने की कोई परंपरा न थी , न चाचाजी ही रमेश को पढ़ाना चाहते थे , परन्तु एकदिन गैलकोटीजी ही बालक रमेश के चाचाजी को धर-पकड़ते हैं और उनकी जिद के कारण चाचाजी उसे स्कूल भेजने पर विवश हो जाते हैं । गैलकोटीजी ने कहा था — "अपने स्वर्गीय भाई की इस धरोहर को आगे पढ़ाना आपका कर्तव्य होता था ; मेरा नहीं । लेकिन यह लड़का तो फिर भी स्कूल जाएगा । इसे आगे पढ़ना है । मैं यह संकल्प कर चुका हूं । ... और यह कल से ही स्कूल आयेगा , यह मेरा ब्रह्मवाक्य है । "[61]

लक्ष्मणसिंह गैलकोटीजी का वह ब्रह्मवाक्य तो सत्य प्रमाणित हुआ , पर उसके लिए बालक रमेश को दुर्धर्ष संघर्ष से गुजरना पड़ा था ।

HANSA MEHTA LIBRARY
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

गैलकोटीजीने बालक रमेश को कहा था कि " अगर तुम्हें जूठे बरतन घिसने पड़े , औरतों के घाघरे भी धोने पड़ें , तो भी विद्या-प्राप्ति के महत् लक्ष्य से विमुख न होना । " 62

इस प्रकार किसी तरह अल्मोड़े के राजकीय उच्च महाविद्यालय में आठवीं में प्रवेश तो पा लिया , परन्तु इसके लिए घर-बाहर के इतने व्यंग्य-बाण झेलने पड़ते थे कि बालक रमेश को कई बार भाग जाने की इच्छा होती थी । उन दिनों के बारे में बाद में मटियानीजी ने लिखा है — " मेरे सामने चाचाजी की शर्त थी कि यदि मैं सुबह-शाम "शिकार की दुकान " [मटन-शोप] में काम करूं , तो मेरा वहां रहना संभव हो सकता है । " 63

उन दिनों पढ़ने-लिखने और खेलने की उम्र में लेख क के छोटे भाई को रामजे हाईस्कूल के सामने फुटपाथ पर बैठकर मूंगफली और चूरन की गोलियां बेचनी पड़ती थी , छोटी बहन को हररोज़ मार खानी पड़ती थी और खुद लेखक को याने रमेश को रोज़ तड़के उठकर दो-तीन बकरियों की खाल निकालकर , उनका "शिकार" दुकान में ठीक से लगाकर उनकी आंतें साफ़ करनी पड़ती थीं । तब कहीं स्कूल जाना नसीब होता था । एक बार शारीरिक श्रम और कष्ट को मनुष्य बर्दाश्त कर सकता है , पर ऐसा काम जो उसकी आत्मा को गवारा न हो करना बड़ा ही यंत्रणा-पूर्ण होता है ।

सन् 1950 के आसपास बालक रमेश ने पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ना तथा उनमें कविता-कहानियां लिखना प्रारंभ किया था । कुंवरसिंह तिलोरा जैसे कुछ सज्जनों ने इस बालक का उत्साह भी बढ़ाया और "अमर कहानी" तथा "रंग महल " जैसी पत्रिकाओं में उनकी कुछ प्रारंभिक कहानियां तथा कविताएं प्रकाशित भी हुई । उन दिनों बालक रमेश की आंखों में "महाकवि" और "उपन्यास-सम्राट" बनने के सपने तैरने लगे थे , पर दूसरी तरफ़ लोगों के व्यंग्य-बाण बिच्छू-सा डंक देते थे — " अरे ,

बिशुनवा जुआरी का बेटा और शेरसिंग बूचड़ का भतीजा लेखक बन रहा है । बाप-दादा उसके जुआ खेलते-खेलते ही खत्म हो गये , चाचा भी सभी बूचड़ और जुआरी ही हैं ..... और वह लौंडा कविता-कहानियाँ लिख रहा है ... घोर कलियुग किसे कहते हैं ? जुआरी का बेटा , बूचड़ का भतीजा पंत-इलाचन्द्र बनने का सपना देख रहा है । " 64

लोगों के इन तानों-तिसनों से आहत होकर बालक रमेश ने तब भीष्म-प्रतिज्ञा ली थी कि अब कुछ भी हो जाय , साहित्यकार बनूंगा ही बनूंगा । इस संदर्भ में लेखक शैलेश मटियानी ने बाद में लिखा था — " आज से मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण मेरे इस लक्ष को समर्पित होगा कि मुझे साहित्यकार ~~बनना×ही×है××~~ ही बनना है , और कुछ नहीं । .... मैं यह सिद्ध करके दिखाऊंगा कि हाँ , जुआरी का बेटा , बूचड़ का भतीजा भी साहित्यकार बन सकता है । .... मैं यह सिद्ध कर दूं कि साहित्य-रचना किसी वर्ग-विशेष की ,जाति-पांति की बपौती नहीं है । " 65

प्रेमचन्द की भाँति शैलेश मटियानी की विधिवत् शिक्षा तो हाईस्कूल तक की ही रही थी , { प्रेमचन्दजी ने इण्टर और बी.ए. तो बहुत बाद में किया था } जिसको प्राप्त करने में अनेक लोगों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष योगदान रहा है । मंझले चाचा से आर्थिक सहायता मिली तो दादी से लाड़-प्यार । इसमें गुरुवर लक्ष्मणसिंह गैलकोटी , गुरुवर्य नारायणदत्तजी जोशी , ~~धर्मानन्दजी~~× धर्मानन्दजी तथा भाईश्री समशेरबहादुरसिंह जैसों की प्रेरणा ने उन्हें सदैव नैतिक बल प्रदान किया । लेखक बनने की जद्दोजहद में बालक {किशोर} रमेश जब टूट-सा गया था , तब समशेर ने जो बात कही थी उसे लेखक ने गिरह में बांध ली थी — " भई , रमेश , सीधी-सी बात है कि यदि तुम ईमानदारी

से ऐसा अनुभव करते हो और तुम्हें अपनी प्रतिभा के प्रति कोई अटूट आस्था नहीं तो तुम साहित्यकार बनने के मोह से मुक्त हो जाओ । पूरा ध्यान रोजी-रोटी खोजने पर केन्द्रित करो । इससे तुम्हारा मानसिक क्लेश भी कम हो जायेगा । .... और यदि लिखना हो , तो फिर इस अपराजेय आस्था के साथ लिखो कि तुम्हें साहित्यकार ही नहीं , महान साहित्यकार बनना है । जितना महद् संकल्प करोगे , उतना ही ऊपर उठ सकोगे , मगर उसी अनुपात में घोर विपत्तियाँ भी झेलनी होंगी । वैसी-कुछ तुम्हारी स्थिति है , उसे देखते हुए यह आवश्यक है , कि तुम कुछ ठोस निर्णय निश्चय कर लो , अन्यथा कई व्यर्थ की विपदाएं तुम्हें घेर लेंगी । " 66

शैलेश मटियानीजी का जीवन-संघर्ष :

किशोर रमेश ने कवि शमशेर× समशेर की बात को ज़िन्दगी-भर के लिए गिरह में बांध दिया । दुर्धर्ष संघर्ष किया । प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य में अपना स्थान बनाया । अनेक उपन्यास एवं कहानियां लिखीं । यह संघर्ष संघर्ष का रास्ता कैसे तय हुआ उसके सूत्र हमें "मेरी तैंतीस कहानियां " की भूमिका , " लेखक की हैसियत से " , "लेखक और संवेदना " , "यदा-कदा" तथा "त्रिज्या" के आत्म-कथनात्मक लेख तथा संस्मरण इत्यादि से प्राप्त होते हैं । इनके आधार पर हम लेखक के जीवन-संघर्ष के कतिपय बिन्दुओं को उकेरने का प्रयत्न करेंगे क्योंकि लेखक की सृष्टि पहचानने के लिए उसे जानना-समझना आवश्यक हो जाता है ।

हाईस्कूल तक की शिक्षा तो पा ली , परन्तु उसके बाद दादी का देहान्त हो गया और लेखक (रमेश) की चाचा के यहां से भाग छूटने की इच्छा प्रबल होती गई । अतः एक दिन छोटी बहन हीरा तथा छोटे भाई को चाचा के यहां भगवान भरोसे छोड़कर कुछ रूपये चुराकर भाग निकला और हलद्वानी होते हुए दिल्ली पहुंच

गया । 67

दिल्ली पहुंचकर "अमर कहानी" के संपादक भाई ओमप्रकाश को मिलना , उनके प्रयत्नों से "अग्रवाल एण्ड कंपनी" में चालीस रूपया मासिक की नौकरी , परंतु लेखक बxx बनने की ललक के कारण इलाहाबाद जाना , उसके लिए दो-चार दिन में ही "दो-राहा" नामक उपन्यास को लिखकर उसे पन्द्रह रूपये में बेच देना , इलाहाबाद जाकर "माया" के दफ्तर में भाई समशेर बहादुर सिंह को मिलना , उनका सक्रिय सहयोग मिलना , उनके प्रयत्नों से लीडर प्रेस में जूठे बर्तन-प्लेट धोने की नौकरी मिलना , सपनों की दुनिया में खोये रहने के कारण एक प्लेट का टूट जाना , अतः वहां से निकाला जाना , भूखे प्यासे रेल्वे के प्लेटफार्म पर पड़े रहना , ठण्ड के मारे एक मकान के कोने में दुबकने का प्रयत्न करना , मकान मालिक का उस पर शक होना और फलतः पुलिस के हवाले करना , सच जानने पर पुलिस का सद्व्यवहार , दूसरे दिन पुनः भाई समशेर को मिलना , समशेर द्वारा इलाहाबाद के ही एक महान साहित्यकार और कवि के पास चिट्ठी लेकर भेजना , उन कवि महोदय द्वारा बहुत बुरी तरह से फटकारा जाना , वहां से किसी तरह मुजफ्फरनगर पहुंचना, वहां किसी सज्जन के यहाँ महीनों जूठे बर्तन घिसना , झाड़ू लगाने से लेकर उनकी मैडम के पेटीकोट-ब्लाउज़ धोने तक का काम करना , इस प्रकार अपने गुरु गैलकोटीजी की बात को ध्यान में रखना , वहां से पुनः दिल्ली पहुंचना , "दैनिक हिन्दुस्तान - " के भाई ब्रजमोहन शर्मा से पांच रूपये उधार लेकर किसी तरह बिना टिकट बम्बई पहुंचना (इसका सटीक वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास "बोरीवली से बोरीबन्दर तक " तथा "मेरी तैंतीस कहानियां " की कई कहानियों में किया है ।) , वहां अनेक बार बम्बई की पुलिस चौकियों में पड़े रहना ; बम्बई में इधर-उधर भटकते हुए फुटपाथों पर पलने-पनपने वाले मजदूरों , भिखमंगों , कुलियों , दादाओं , गुण्डों , चोर-बदमाशों , जेबकतरों , रक्तपिपासियों आदि के संसार से

तथा उनकी गलित वास्तविकताओं से परिचित होना ; उनके भीतर के क्रन्दन को समझना ; एक बार घोर निराशा की स्थिति में आत्महत्या का असफल प्रयास करना ; परन्तु फिर गुरु की बात के स्मरण से आत्म-बल का जुटना और "श्रीकृष्ण पुरी हाउस " में "छोकरे" की नौकरी करना ; यहाँ इस भीष्म-प्रतिज्ञा का करना कि जब तक स्वतंत्र रूप से मसीजीवी होने की स्थिति का निर्माण नहीं हो जाता तब तक कैसी भी आपत्ति आ जावे पर काम नहीं छोड़ेगा ; उस प्रतिज्ञा पर कायम रहते हुए आठ रूपये से लेकर बीस रूपये तक की तरक्की करना, अन्ततोगत्वा उस बहु-प्रतिक्षित क्षण का आ पहुंचना जब भाई नन्द-किशोर मित्तल ने लेखकीय जीवन के लिए बाहर निकलने का आग्रह किया ; वहाँ से सन् 1956 में बम्बई को सलाम करते हुए पुनः इलाहा-बाद पहुंचना ; तबसे लेकर अद्यावधि केवल लेखन को ही आजीविका का साधन बनाना ; पत्रकारिता करना और उसके लिए दर-दर की खाक छानना ξ पत्रकारिता के संघर्ष और जीवट का सटीक वर्णन उनके उप-न्यास "आकाश कितना अनंत है " में उपलब्ध होता है । ξ ; पत्र-कारिता के कारण ही कुछ समानधर्मा साहित्य-प्रेमियों से मिलना ; उनके जरिये चेतना के दीपक को निरंतर प्रज्वलित रख पाना ; एतदर्थ असत्य , असाहित्यिक , अनुपयुक्त , विवेकहीन कार्यों से समझौता न करना और सकारात्मक बातों के लिए सदैव जूझते रहना ; असाहित्यिक आंदोलनों से न जुड़ना ; खेमापरस्ती से दूर रहकर अपनी एक अलग पहचान बनाना ; बड़े-बड़े साहित्यकारों की भी शेह-शरम रखे बिना अपनी समझ के अनुसार उन्हें खरी-खरी सुनाना ; सख्ती की सीमा तक किसी चीज़ के पीछे पड़ जाना और इस प्रकार बखूबी दोस्ती व दुश्मनी को निभाना — संक्षेप में यही है लेखक मटियानीजी की संघर्ष-यात्रा ।

इस प्रकार अन्त में लेखक की उस अपराजेय आस्था की जीत होती है । इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है — " यह कलियुग का एक बहुत बड़ा गुण है कि उसमें श्रेष्ठ कर्मों का प्रतिपादन उच्चवर्ग के लोगों

की बपौती नहीं रह जाती , बल्कि यदि साधना हो , संकल्प हो और प्रतिभा हो , तो पुजारी का बेटा और कसाई का भतीजा भी साहित्यकार बन सकता है । " 68

इलाहाबाद में उस महान साहित्यकार के द्वारा लेखक के सम्मान पर जो चोट पहुंची उससे भी लेखक ने यह गांठ बांधी कि "साहित्यकार बनने का संकल्प दुर्धर्ष जीवन-संघर्षों ' के कंकरीले-पथरीले दुर्गम मार्गों ' पर होते हुए आगे बढ़ने पर ही पूरा होगा , बड़े साहित्यकारों की शरण में जाने पर नहीं ? " 69

मटियानीजी की कुछ अवधारणाएं :

लेखक जिस चरित्र-सृष्टि का निर्माण करता है , उसमें उसकी मानव, नीति, जीवन, ××× मूल्य विषयक अवधारणाओं का मुख्य योगदान होता है । इन अवधारणाओं का निर्माण लेखकीय अनुभवों से होता है । यहां मटियानीजी की कतिपय अवधारणाओं को रखने का एक उपक्रम है ।

1. जो साहित्यकार यह कहे कि उसके द्वारा कहे शब्दों को उसके आचरण में न तलाशा जाये , उसे यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि उसे "शब्द" के प्रयोग का नैतिक अधिकार नहीं है । "शब्द" सिर्फ लिपि में नहीं , अर्थ में नहीं , अपने नाद और सत्य में भी होता है और इसलिए सिर्फ वहीं साकार तथा सार्थक होता है , जहां उसे अपने को धारण करनेवाला आचरण मिलता है , क्योंकि "सत्य" की पहली मांग "आचरण" की होती है । 70

2. " कोई लेखक यदि नैतिक और सामाजिक मूल्यों के पक्ष में नहीं है , तो अपने इस ' आत्मक्षय ' का अभिशाप भी उसे ही भोगना है । " 71

3. "मार्क्सवाद एक विचार-दर्शन है और कोई भी विचार-

दर्शन साहित्य के वैचारिक परिप्रेक्ष्य को विस्तृति दे सकता है, यदि उसे साहित्य पर न लादा जाय। संस्कृति और साहित्य, ये दोनों जितने समन्वयी, उतने ही उदात्त होते हैं। " 72

4. " मनुष्य में जब तक प्राण रहते हैं, तब तक वह जल में डूबता भी शब्द करता है — शब्द जब जाता रहे, तब शव बन जाता है। और तब न उसे जल के प्रश्न व्यापते हैं, न थल के। न दिशा के न काल के। न दृष्टि के न गति के। संवेदना के जाते रहते ही उसमें शब्द की चेतना भी जाती रहती है। मनुष्य का शैतान होना यही है — शब्द की चेतना का जाते रहना। " 73

5." समर्थ लेखकों की भाषा में हमें ये पांचों तत्त्व प्रभूत मात्रा में सुलभ होते हैं — भूमि, जल, अग्नि, आकाश और हवा। भूमि जो हमें आधार देती है, जल जो हमें प्रवाह देता है, अग्नि जो हमें आलोक देता है, आकाश जो हमें विस्तार देता है — और हवा जो हमें स्पर्श देती है। श्रेष्ठ साहित्य हमें एक समानांतर दृष्टि में ले जाता है। " 74

6." और लेखक कुछ नहीं करता, सिवा इसके, कि मनुष्य में सारे संघातों के बाद भी शेष रह गये को इस तरह उपस्थित करता रहता है कि दृष्टांत रहे। " 75

7." जो इस तथ्य को भलीभांति जानते हैं कि साहित्य भी सिर्फ वही बचा रहता है, जिसमें दिखाई पड़ता है मनुष्य — अपनी पूरी शक्ति से स्वयं से सवाल उठाता हुआ। " 76

8. " साहित्य में व्यक्तिगत या दलगत नहीं, वस्तुगत आकलन जरूरी होता है। पूर्वग्रह या अनुग्रह, दोनों ही गलत नतीजों पर ले जाते हैं। " 77

9." संवेदना शुद्ध सामाजिक वस्तु है — समाज के बिना

इसका कोई अस्तित्व नहीं , क्योंकि यह बरते जाने पर ही बढ़ती है , और जब बढ़ती है , तब ही पूरे प्रवाह में प्रकट होती है । यही कारण कि समजा को जितना कवियों ने जाना , कोई नहीं जान सका , क्योंकि संवेदना के सवालों से शून्य ज्ञान हमेशा अधूरा होता है — अधूरा और घातक ।" 78

10." साहित्य को उसकी सामाजिक प्रासंगिकताओं से काट-कर अल्पसंख्यक बुद्धिजीवियों xx के विलास और रोजगार की वस्तु बना देxx दिये जाने का यह बिल्कुल स्वाभाविक परिणाम होगा कि वह समाज के वृत्त से हटकर , समाज-विरोधी व्यवस्था का उपजीव्य बनकर रह जाय ।" 79

11." मेरी मान्यता यह रही है कि यदि साहित्यकार स्वयं शोxxx शोषित या पीड़ित न भी रहा हो , तो भी उसे शोषितों-पीड़ितों का पक्षधर होना चाहिए , न कि शोषकों का । वर्ण-वर्ग व्यवस्था और वादों से परे , साहित्यकार की एक अलग स्थिति होती है , जहां वह तटस्थ भाव से साहित्य-सृजन के अति-रिक्त "क्रौंच-वध " की करुणा से संवेदित और व्याध की हिंसा वृत्ति के प्रति क्रुद्ध होता है । वाल्मीकि-धर्मा साहित्यकार यदि पीड़ितों-अभिशप्तों के प्रति संवेदना-सहानुभूति नहीं रखता , तो वह जन-कल्याण के संगमरमरी सोपानों से लुढ़ककर , जन-शोषकों की कुत्सित शरण में ठौर पाता है और उसका स्वधर्म सिर्फ यशार्जन, धनार्जन और पुस्तकों के प्रकाशन तक ही सीमित होता है ।" 80

12." मैं कहना चाहता हूं अपने सहधर्मियों से कि साहित्य सिर्फ विदेशी साहित्यकारों की कृतियों , काफी-हाउसों , गोष्ठियों और कमरों की दीवारों तक ही सीमित नहीं है । साहित्य हमारे देश की मिट्टी , संस्कृति x खेत-खलिहानों , किसानों-मजदूरों और गांव-शहरों में सर्वत्र है । विप्रुतियों , कुण्ठाओं और कलात्मक व्याधियों से ग्रस्त नायक-नायिकाओं से इतर भी ,

यहां करोड़ों ऐसे चरित्र हैं, जिनके मेहनती हाथों के स्पर्श से मिट्टी में अन्नपूर्णा-फसलें लहरा उठती हैं, जिनकी रसार्द्र भावनाओं के ज्वार से आत्मा का समुंदर लहराने लगता है और जिनकी करुणा-विवशता से संवेदित होकर आंखों का पानी अग्निखण्डों का आकार ग्रहण करने लगता है। कला और शिल्प की संभावनाएं सिर्फ फ्रायडीय-मनोग्रंथियों से उद्भ्रान्त चरित्रों के चित्रण तक ही सीमित नहीं है।" 81

13." एक लेखक की हैसियत से अपने भाषिक असामर्थ्य का साक्षात्कार किसी लेखक को तब होता है, जब भाषा की सारी पूर्वकृत अभ्यस्तता और पारंगतता अपने ही अनुभवों के सामने अपर्याप्त और बौनी पड़ने लगती है। अपने भाषिक असामर्थ्य के इस साक्षात्कार के बाद ही कोई लेखक "लिखने की भाषा" और "मनुष्य होने की भाषा" के बीच के फर्क को पहचान पाता है।" 82

14." अपने बीते हुए समय को "दुर्दिन" कहते हुए मुझे हिचक ही हो सकती है, क्योंकि अपने अतीत से स्मरण करने योग्य जो-कुछ मेरी स्मृतियों में रह गया है, इसी कठिन समय में अर्जित किया हुआ है। इसी कठिन समय से गुजरते हुए मुझे मनुष्य के सिर्फ बाहर ही नहीं, भीतर तक भी झांकने के अवसर मिले हैं। लोगों से जितना दुर्व्यवहार और अपमान मिला है, इससे कम संवेदनशीलता और आत्मीयता भी नहीं मिली है।" 83

15." सामाजिक, धार्मिक, सामूहिक और राजनैतिक मापदण्डों द्वारा रेखांकित सारी चरित्रहीनताओं, सारी भ्रष्टताओं से गुजर जाने के बावजूद यदि कोई व्यक्ति [redacted] रचनाशील रह सके, तो उससे बड़ा चरित्रवान कोई हो नहीं सकता।" 84

16." जो व्यक्ति एक बार हिन्दू संस्कारों में पल चुका हो किसी भी अन्य धर्म को अपनी अंतरात्मा से स्वीकार पाना उसके लिए

शायद सम्भव नहीं । हिन्दू से मुसलमान या ईसाई होने वाले वही लोग सहजता से दूसरे धर्म में रह पाये , जो सिर्फ जाति से हिन्दू थे , संस्कारों से नहीं ।" 85

17. "शिविरबद्धता "व्यक्ति" के इर्दगिर्द हो या "सिद्धान्त" के — इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता । और यदि यह निरूपित करने की कोशिश की गई है कि सिद्धान्तवाद से संवेदना की क्षति होती है , फिर चाहे वह कला और संस्कृति का सिद्धान्त हो या मार्क्सवाद या जनवाद का , तो इस बात को दृष्टिगत रखते हुए ही कि "सिद्धान्त" कोई संवेदन के क्षेत्र से परे की वस्तु नहीं , लेकिन जहाँ सिद्धान्त और संवेदना में सम्यक् समन्वय न हो , बेहतर लिखे जाने की गुंजाइश भी नहीं होगी ।" 86

18. " दूसरों पर दया करने के अहंकार से दूषित मनोवृत्ति और कुछ नहीं , यदि वह "पहले लोगों को उत्पीड़न का आखेट बनाओ और फिर अपने को उनके बीच कल्याकर के रूप में प्रतिष्ठित करो" की धूर्तता में से उदित हो । अनाथालय , धर्मशाले , मन्दिर , ट्रस्ट , दातव्य औषधालय और विद्यालय — ये सब पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के पैशाचिक चरित्र पर मानव-कल्याण की मुहर लगाने के सुनियोजित षड्यन्त्रों की उपज होते हैं ।" 87

19. " किसी साहित्यकार का व्यवस्था के तंत्र में जाकर सुविधाभोग में जुटना उतना क्षतिकारी नहीं , जितना कि अपने इस सुविधाभोग को भी मूल्य सिद्ध करने का चातुर्य बरतना ।" 88

20. कलावाद और मार्क्सवाद , दोनों का प्रवाह समाज की ओर न होकर राजनीतिक दलों की ओर होने से , ये साहि-त्य में लोगों की समझ गड़बड़ाने का माध्यम बन गए हैं , और दोनों ही खेमों के अगली कतार के बुद्धिजीवी लोगों के स्वयं के सोच-विचार की जमीन छेकने की होड़ में है । जबकि लेखक का काम दूसरों की

चेतना पर×[illegible]×[illegible] पालथी मारकर बैठना नहीं , बल्कि स्वयं को दूसरों के अन्तःस्रोतों से जोड़ना है ।" 89

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मटियानीजी एक एक स्वतंत्रचेत्ता साहित्यकार हैं । साहित्य और कला को लेकर किसी वाद के घेरे में स्वयं को बांधना वे समुचित नहीं मानते । लेखन के केन्द्र में मनुष्य हो , उसमें मानवीय संवेदनाओं का निरूपण हो यही ध्यातव्य रहना चाहिए । लेखक का प्रत्येक शब्द उसकी संवेदना से गुजरकर आना चाहिए और लेखक को अपनी संवेदना में सच्चा भी होना चाहिए , अतः लेखक के कृतित्व को उसके व्यक्तित्व के निकष पर भी कसना चाहिए , लेखक इस मत के पक्षधर हैं । वादों के दायरों में कैद न होने के कारण , उन्होंने हर जगह मनुष्य को तलाशा है । फलतः उनकी सहानुभूति मनुष्य-मात्र के लिए है । निम्न वर्ग के लोगों के मानवीय सरोकारों सामने लाने के बावजूद उनकी कमजोरियों को भी रेखांकित किया है ; ठीक उसी तरह उच्च-वर्ग के लोगों में भी उनकी कमजोरियों के साथ उनके मानवीय पक्षों को भी उजागर किया है , जिसे हम "आकाश कितना अनंत है " तथा "नागवल्लरी" जैसे उपन्यासों तथा "प्रेतमुक्ति" , " मेंड़ें और गड़रिये" , "मिसेज ग्रीनवुड " , "जिबूका" , "इति-हास " जैसी कहानियों में दृष्टिगत कर सकते हैं । लेखक का सरोकार लोगों से है । लोग जो हर बात बुद्धि से नहीं सोचते पर हृदय की पुकार से भी परिचालित होते हैं । लोगों की आस्था को भी वे मानवीय सौन्दर्य का रूप प्रदान करते हैं । यहां डा. देसाई की कुछ काव्य-पंक्तियां स्मृति में कौंध रही हैं —

" व्याप गया अब तो यहां , अकिल-फकिल का रोग ।
कबिरा कहां गये सभी , गाते -गरियाते लोग ।। "90

मटियानीजी भी इन्हीं "गाते-गरियाते-" लोगों के दिवाने हैं और जिन्दगी भर इन्हीं लोगों की गाथा को वे गाते रहे हैं ।

लेखक की नारी-विषयक अवधारणा :

प्रस्तुत अध्ययन में मटियानीजी के कहानी-साहित्य में निरूपित नारी के नाना रूपों को विश्लेषित करने का प्रयत्न हुआ है, अतः लेखक के नारी-विषयक दृष्टिकोण को समझ लेना भी आवश्यक है।

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि लेखक किसी प्रकार के वादों के घेरे में विश्वास नहीं करता, बल्कि इन घेरों और दायरों की दीवारों को फांदने का कार्य ही उन्होंने किया है। उनकी चेतना के केन्द्र में तो मनुष्य है। नारी भी अच्छी×बुरी×हो सकती×है× मनुष्य है। मनुष्य अच्छा-बुरा हो सकता है। अतः नारी भी अच्छी-बुरी हो सकती है। परन्तु नारी के उक्त दोनों गुण-दोष को लेखक ने एक स्रष्टा के विवेक और कलागत निरपेक्षता के साथ उकेरा है।

लेखक का नारी-विषयक नजरिया मेहता लज्जाराम शर्मा जैसा भी नहीं है, जहां हर शिक्षित नारी गृहस्थी की दीवारों को तोड़ने वाली बताई गई है और अनपढ़ और गंवार स्त्री को सद्‌गुणों का भण्डार। वस्तुतः मनुष्य संस्कारों से परिचालित होता है। अच्छे-बुरे संस्कार हर जगह, हर स्थिति में, हर वर्ग और वर्ण में होते हैं। अतः लेखक ने शिक्षित-अशिक्षित दोनों प्रकार की नारियों को उनके गुण-दोषों के साथ चित्रित किया है।

ठीक उसी तरह लेखक का दृष्टिकोण पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी जैसा भी नहीं है, जहां हर शिक्षित नारी अममम×× अपनी भाग्य-विधाता होती है। लेखक ने शिक्षित नारी के भी गुण-दोषों को तटस्थता के साथ उकेरा है। वस्तुतः यहां लेखक का दृष्टिकोण कबीर की विचारधारा से मेल खाता है। बहुत-से लोग कबीर को

नारी-विरोधी मानते हैं, पर ऐसा नहीं है। अपनी भावुकता के क्षणों में तो कबीर स्वयं नारीमय हो जाते है — " रामदेव मोरे पाहुने आये, हौं जोबन मदमाती। " वस्तुतः कबीर नारी के अविद्या रूप, विकार-रूप, वासनागत-रूप का विरोध करते हैं। उसके विद्या रूप का, उसके समर्पित रूप का, उसके सती रूप का कहीं कोई विरोध कबीर में नहीं है।

ठीक उसी तरह मटियानीजी नारी के माता-रूप को, अन्नपूर्णा-स्वरूप को, भगिनी-रूप को, पत्नी-रूप को, प्रियतमा-रूप को, पुत्री-रूप को तो खूब चाहते-सराहते हैं; परन्तु नारी के अविद्या रूप से उन्हें ~~xxxxx~~ घृणा है। उसके कुलटा- रूप या छिनाल-रूप की वे भर्त्सना करते हैं। नारी के पतन में जहां कोई मानवीय मजबूरी या विवशता होती है, वहां उसे वे पूरी ~~xxxxx~~ सहानुभूति के साथ चित्रित करते हैं। वे शारीरिक नहीं, मानसिक पवित्रता और प्रामाणिकता के पक्षपाती हैं। अतःसामान्य वेश्याओं और मिरासिनों का चित्रण भी उन्होंने मानवीय संवेदना के साथ किया है जिसे हम "बोरीवली से बोरीबन्दर तक", "कथा नर्मदाबेन गंगूबाई", " चौथी मुट्ठी " जैसे उपन्यासों तथा " जिसकी जरूरत नहीं थी", " चिथड़े ", "चिट्ठल ", "एक कोप चा : दो खारी बिस्किट ", " दो दुःखों का एक सुख " जैसी कहानियों में रेखांकित कर सकते हैं।

लेखक ने स्थान-स्थान पर नारी के "महतारी" रूप को प्राधान्य दिया है। "चौथी मुट्ठी" उपन्यास में उन्होंने "कौशिला" और "मोतिमा" नामक दो नारी-पात्रों के इसी "महतारी" रूप को रेखांकित किया है। दोनों को समाज ने झिंझोड़ा है, थपेड़ा है, निचोड़ा है। परन्तु दोनों की कथाएं भिन्न हैं। समानता सिर्फ उनकी व्यथा में है, चित्कार में है, उनके महतारी रूप में है। कौंशिला को उसके सास-ससुर, सौत और पति ने झिंझोड़ा

है । वह उनके तमाम-तमाम सितम बरदाश्त कर लेती है , परन्तु जब उसकी "छौनी" बाप होते हुए भी निराधारता की ~~xxxx~~ स्थिति में आ जाती है , तब उसका "महतारी" रूप प्रतिशोध के लिए चित्कार कर उठता है और वह चित्तई के गोल्ल देवता के दरबार में उनके लिए "घात" लगाने को तत्पर हो जाती है । दूसरी तरफ मोतिमा को समाज के विभिन्न लोगों ने बहुत बुरी तरह से सताया है । उसे अनेक बार बलात्कृत किया है । उसे एक वेश्या-सा जीवन भी जीना पड़ा है , परन्तु उसके बच्चे जब उससे छिन जाते हैं तब वह पगला जाती है और गन्दी गालियाँ बकने लगती है । इस सन्दर्भ में स्वयं लेखक का कहना है —

" "चौथी मुट्ठी" लिखने बैठा था , तब बस इतनी ही पूंजी मेरे पास थी । कौंशिला मोटिया-धारा तक पहुंच चुकी तो लगा कि जिस मोतिमा ~~की~~ का उल्लेख-मात्र ही कर पाया था , वह कौंशिला से भी दूने-तिगुने ~~xxxx~~ वेग से मेरी ओर दौड़ी चली आ रही है — "अरे साले ! क्या कौंशिला ही लगती है तेरी महतारी ? मोतिमा रांड़ी किसीकी कुछ नहीं लगती ? कौंशिला की व्यथा तुझे घनी लगती है , साले मोतिमा का दुःख-दरद नहीं दिखता ? कौंशिला ने संतान जनमाई हैं , मोतिमा रांडी की तो टांग ही नहीं फटी ? अरे " अरे भाई ! साथ ले जाने को भी तो कोई लाज-शरम वाली बहू-बेटी चाहिए , अधनंगी मोतिमा रांडी को साथ ले जाकर कौन अपना फजीता करवाएगा ? ... मेरा दायित्व था , मैं "फजीहत" का खतरा मोल लेकर भी अपनी मोतिमा महतारी को साथ ले चला । " 91

अभिप्राय यह कि लेखक ने समाज के निम्नतम वर्ग से भी नारी-पात्रों को उठाया है जो गन्दी से गन्दी मां-बहन की गालियां बोलते हैं , परन्तु उनके "मातृत्व" रूप की दीप्ति में कोई आंच नहीं आती । वे उसे बराबर बचाकर ले आते हैं । लेखक भी छूटता ही

है, अतः उसका भी काम कीचड़ में कमल खिलाना हो सकता है। और मटियानीजी ने ऐसे कमल अनेक स्थानों पर खिलाये हैं।

कहानीकार मटियानी : मटियानीजी का कृतित्व प्रायः पांच दशकों में फैला हुआ है। इसमें उन्होंने अनेक उपन्यास तथा कहानियां लिखी हैं। परन्तु मटियानीजी के कृतित्व का जितना और जैसा मूल्यांकन होना चाहिए नहीं हुआ। कहानी पर लिखे प्रबन्धों तथा पुस्तकों में प्रायः उन्हें आंचलिकता के फुटकल खाते में डाल डाल दिया गया है। इस सन्दर्भ में उनके समकालीन कथाकार राजेन्द्र यादव की निम्न टिप्पणी सर्वथा सार्थक समझी जायेंगी —

" मटियानी को मैं भारत के उन सर्वश्रेष्ठ कथाकारों के रूप में देखता हूं जिन्हें विश्व-साहित्य में सिर्फ इसलिए चर्चा नहीं मिली कि वे अंग्रेजी में नहीं आ पाए। उनकी एक-एक कहानी जिस तन्मयता, लयात्मकता, और इन्वाल्वमेण्ट के साथ लिखी गई है, दूसरे कथाकार वह काम अपने उपन्यासों में भी नहीं कर पाते। उनके पास हम सबके मुकाबले अधिक संख्या में उत्कृष्ट कहानियां हैं। वे भयानक आस्थावान लेखक हैं और यही आस्था उन्हें टालस्टाय, चेखव और तुर्गनेव जैसी गरिमा देती है। अपने पात्रों को उन्होंने जैसी आत्मीय ऊष्मा दी है, वह प्रायः प्रेमचन्द भी नहीं कर पाये। हां, उनके उपन्यास जितने बिखरे हुए और कमज़ोर हैं, कहानियां उतनी ही कसी और गठी हुई हैं।" [92]

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुंचा जा सकता है :—

{1} प्राचीन कहानी जहां कथा-सूत्रों पर आधृत होती थी, वहां आधुनिक कहानी यथार्थ जीवनानुभवों का आकलन करती है।

§2§ विश्व में प्रायः पचास प्रतिशत संख्या स्त्रियों की है, अतः मानव-जीवन की कहानी में नारी-जीवन का आलेखन अपरिहार्य है। अतः मटियानीजी की कहानियों में नारी के अनेक रूपों का चित्रण उपलब्ध होता है।

§3§ कहानी के विकास में आधुनिक काल में गद्य का विकास, नवजागरण काल, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, वैचारिक जागरण प्रभृति कारकों को परिगणित किया जा सकता है।

§4§ हिन्दी कहानी द्विवेदी युग, प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर युग, स्वातंत्र्योत्तर कहानी, नयी कहानी, समकालीन कहानी जैसे अनेक तबकों से गुजरकर यहाँ तक पहुंची है।

§5§ कहानी को लेकर जितने आंदोलन हुए उतने शायद अन्य किसी विधा में नहीं हुए। कहानी को लेकर "फतवेबाजी" भी बहुत हुई। आलोच्य लेखक प्रेमचन्दोत्तर-स्वातंत्र्योत्तर कहानी के सभी दौरों से गुजरा है, पर उसका सरोकार विभिन्न गुटों और फतवों से न रहकर "कहानी" से ही रहा है।

§6§ स्वातंत्र्योत्तर युगीन-परिवेश का प्रभाव मटियानीजी की अनेक कहानियों में दृष्टिगत होता है।

§7§ किसी भी लेखक के जीवन में शैशवकालीन प्रभावों का विशेष महत्व होता है। मटियानीजी का शैशव अनेक अभावों और संघर्षों से व्याप्त है, जिसके प्रभाव को उनकी कहानियों तथा उपन्यासों में देखा जा सकता है।

§8§ मटियानीजी की जीवन और साहित्य विषयक अवधारणाएं उनके जीवन-संघर्ष का निचोड़ है। उनकी नारी-विषयक अवधारणाएं स्पष्ट, सुचिंतित एवं व्यापक हैं। वे उदार दृष्टिकोण वाले लेखक हैं।

ळळळळळळळळळळळळळ XXXXX ळळळळळळळळळळ

सन्दर्भ-सूची

1- काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय : पृ. 193

2- संस्कृति के चार अध्याय : डॉ० रामधारी सिंह दिनकर - पृ.536-568

3- समीक्षायण : डा० पारूकान्त देसाई : पृ. 125

4- पुस्तक - दस्तक - पृ. 24

5- औरत के हक में : तस्लीमा नसरीन - पृ. 07

6- बिजली के फूल - डा० पारूकान्त देसाई — पृ. 19

7- परिधि पर स्त्री : डा० मृणाल पाण्डेय - पृ. 30

8- ---------- वही ------ पृ. 31

9- गुजरात मां 19 वीं. सदी मां सामाजिक परिवर्तन - डा० नीरा देसाई - पृ. 310

10- युग निर्माता प्रेमचन्द : डा० पारूकान्त देसाई - पृ. 13

11- उद्धृत द्वारा : शिवदान सिंह चौहान , भूमिका : एक पंखुड़ी की तेज धार [उपन्यास] - शमशेर सिंह नरूला ।

12- हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा० भारत भूषण अग्रवाल-पृ. 26

13- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ.

14- उद्धृत द्वारा : संस्कृति के चार अध्याय -डॉ० रामधारी सिंह दिनकर — पृ. 466

15- --------------- वही ------ पृ. 467

16- कहानी विविधा - डा० देवी शंकर अवस्थी — पृ.

17- कबिरा खड़ा बजार में : व्यंग्य निबंध - डा० पारूकान्त देसाई -पृ.

18- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास- डा० पारूकान्त देसाई - पृ. 52 - 53

19- अभी कुछ महीनों पूर्व से यह पत्रिका [धर्मयुग] बंद हो गई है ।

20- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : सं. डा० रामकुमार गुप्त - लेख - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : विविध आन्दोलन - श्री जयेन्द्र त्रिवेदी- पृ. 19

21- उद्धृत द्वारा : डा० पारूकान्त देसाई - समीक्षायण - पृ. 126

22- काव्य के रूप : बाबू गुलाब राय : पृ. 196

23- लेख : साहित्य का उद्देश्य : मंगलसूत्र तथा अन्य कहानियां -- पृ.

24- काव्य के रूप : बाबू गुलाब राय - पृ. 196

25- शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य (शोध-प्रबंध) - डा० सलीम वोरा पृ. 22

26- हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डा० नगेन्द्र - पृ. 474-475

27- ———— वही ———— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 480

28- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डा० नगेन्द्र - 514

29- ———— वही ———— पृ. 515

30- ———— वही ———— पृ. 581

31- युग निर्माता प्रेमचन्द : डा० पारूकान्त देसाई - पृ. 70

32- कथारंग : सं. सुरेन्द्र तिवारी : पृ. 65

33- हिन्दी कहानी एक अन्तरंग पहचान : डा०रामदरश मिश्र - पृ. 7

34- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डा० नगेन्द्र - पृ. 581-582

35- ———— वही ———— पृ. 584

36- ———— वही ———— पृ. 585

37- अज्ञेय एक अध्ययन : डा० भोलाभाई पटेल - पृ. 412

38- शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य : शोध-प्रबंध - डा०सलीम वोरा - पृ. 28

39- गंगा प्रसाद विमल की रचनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन : शोध - प्रबंध - डा० कुमारी पी.वी.पृ. 70-88

40- हिन्दी कहानी के 18 कदम : डा० बटरोही -- पृ. 40

41- एक दुनिया समानांतर - सं. राजेन्द्र यादव -- पृ. 51

42- नई कहानी संदर्भ और प्रकृति : सं. डा० देवी शंकर अवस्थी - पृ. 237

§43§ मानसमाला : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 23

§44§ समकालीन भारतीय साहित्य : त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर : 1990 : साहित्य अकादमी : पृ. 189 ।

§45§ " हिन्दी कहानी : प्रक्रिया और पाठ " : पृ. 180

§46§ जाल : कहानी-संग्रह : विजय : पृ. 19 ।

§47§ राष्ट्रीय विदूषक : कहानी-संग्रह : पृ. 21 ।

§48§ कामरेड का कोट : पृ. 16 ।

§49§ " समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम " : डा. ज्ञानवती अरोरा : पृ. 212 ।

§50§ "आधुनिकता का उत्तरोत्तर : हिन्दुस्तान साप्ताहिक " : मई , 1992 : पृ. 59 ।

§51§ मानसमाला : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 25

§52§ संसद से सड़क तक : धूमिल : पृ. 12 ।

§53§ कल सुनना मुझे : धूमिल : पृ. 27-29 ।

§54§ कर्मभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 114-115 ।

§55§ " हेमिंग्वे : ओल्ड मैन एण्ड द सी " : आर.टी. जैन : पृ. 17 ।

§56§ " द ट्रीटाईज़ आन द नोवेल : राबर्ट लिडले : पृ. 43 ।

§57§ सूखे हुए सेमल के वृन्तों पर : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 57

§58§ यदा-कदा : शैलेश मटियानी : पृ. 63 ।

§59§ मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका से : पृ. 6 ।

§60§ देखिए : संस्मरण : अपसव्य पक्षोपचित : लेखक की हैसियत से : शैलेश मटियानी : पृ. 76 ।

§61§ वही : पृ. 77 ।

§62§ मेरी तैंतीस कहानियां : भूमिका : पृ. 10 ।

§63§ वही : पृ. 10 ।

§64§ वही : पृ. 11 ।

§65§ वही : पृ. 13 ।

§66§ वही : पृ. 16 ।

§67§ वही : पृ. 13 ।

§68§ मेरी तैंतीस कहानियाँ : भूमिका : पृ. 20 ।

§69§ वही : पृ. 17 ।

§70§ लेखक और संवेदना : शैलेश मटियानी : पृ. 47 ।

§71§ वही : पृ. 61 ।

§72§ वही : पृ. 80 ।

§73§ त्रिज्या : पृ. 8 ।

§74§ वही : पृ. 37 ।

§75§ वही : पृ. 51 ।

§76§ यदा-कदा : पृ. 63 ।।

§77§ वही : पृ. 157 ।

§78§ वही : पृ. 158 ।

§79§ त्रिज्या : शैलेश मटियानी : पृ. 13 ।

§80§ मेरी तैंतीस कहानियाँ : शैलेश मटियानी : पृ. 25 ।

§81§ वही : पृ. 31-32 ।

§82§ लेखक की हैसियत से : शैलेश मटियानी : पृ. 15 ।

§83§ वही : पृ. 29 ।

§84§ वही : पृ. 57 ।

§85§ वही : पृ. 118 ।

§86§ लेखक और संवेदना : पृ. 11 ।

§87§ वही : पृ. 33 ।

§88§ त्रिज्या : पा. 281 ।

§89§ यदा-कदा : शैलेश मटियानी : xx पृ. 66 ।

§90§ सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 86

§91§ एक मुँठ अक्षर मेरे : "चौथी मुट्ठी" उपन्यास की भूमिका : पृ. ।

§92§ हंस : मासिक : सम्पादक : राजेन्द्र यादव : पृ. 5 ।

§93§xx